(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २।) | सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥ | एक अंक का ।)

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ८] मथुरा, १ सितम्बर सन् १९४७ ई० [अंक ८

आइए, आन्तरिक गुलामी के बन्धनों को भी काट डालें।

पिंजड़े में बन्द पक्षी को कई प्रकार की सुविधायें भी होती हैं। शिकारी जानवरों से उसकी प्राण रक्षा वह लोहे की छड़ का मजबूत पिंजड़ा करता रहता है। वर्षा, धूप, भूख, प्यास से भी पालने वाला मनुष्य उस पक्षी को बचाता है, स्वतंत्र होने पर पक्षी को अपने रहने और पेट भरने के लिए जो कठिन श्रम करना पड़ता है, उस सबसे पिंजड़े में बन्द रहने वाले को छुटकारा मिलजाता है। इस पर भी पक्षी निरन्तर यही प्रयत्न करता रहता है कि मुझे इस बन्धन से मुक्ति मिले और स्वतंत्र आकाश में उड़ जाऊं। पिंजड़े की सुविधाओं को वह स्वच्छन्द जीवन की असुविधाओं के ऊपर निछावर कर देना चाहता है। स्वाधीनता सचमुच ऐसी ही वस्तु है, उसका मूल्य बुद्धिहीन पक्षी भी समझता है।

मनुष्य को पशु पक्षियों से अधिक चेतना प्राप्त है। इसलिए उसके लिए स्वाधीनता का महत्व और भी अधिक है। ऋषियों का अनुभव है—"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" स्वाधीन को ही सुख मिल सकता है। आज हम राजनैतिक पराधीनता से बहुत हद तक मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं। इस शुभ अवसर पर हर भारतवासी का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। पर अभी बौद्धिक पराधीनता, इन्द्रियों की पराधीनता एवं कुविचारों की पराधीनता शेष है। आइए, इन बन्धनों को भी तोड़ने का प्रयत्न करें तभी सर्वतोमुखी मुक्ति का आनन्द मिल सकेगा।

शास्त्र मंथन को नवनीत।

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेपि हि सज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥१॥

सज्जन नारियल के फल के समान बाहर तो कड़े परन्तु भीतर बहुत मधुर और कोमल होते हैं। और दुष्ट बेर के फल के समान बाहर तो मधुर परन्तु भीतर कड़े होते हैं।

सुहृदि निरंतरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे।
स्वामिनि सौहृदयुक्ते निवेद्य दुःखं सुखी भवति॥२

अभिन्नहृदय मित्र से, गुणवान् नौकर से, आज्ञाकारिणी स्त्री से और मित्रभाव रखने वाले स्वामी से अपने दुख की बात कहने से चित्त सुखी हो जाता है अर्थात् मन का क्लेश कम हो जाता है।

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
न समीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष एक पैर आगे रखता है, परन्तु दूसरा पैर पीछे जमाये रहता है। जब तक दूसरे स्थान की छान बीन अच्छी तरह नहीं कर लेता, तब तक वह पहले स्थान को नहीं त्यागता।

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ४॥

बुद्धिमान् पुरुष अपने को अजर अमर समझता हुआ विद्या और धन का संचय करे। परन्तु धर्मकार्य यह समझ कर करे कि मानो मृत्यु चोटी पकड़े हुए है।

यः समुत्पतितं क्रोधं मानञ्चापि नियच्छति।
स श्रियोभाजनं पुंसां यश्चापत्सु न मुह्यति ॥५॥

जो मनुष्य उठे हुए क्रोध और अभिमान को रोकता है और आपत्तियों में नहीं घबराता, वह पुरुषों में श्री अर्थात् लक्ष्मी का पात्र-धनवान् होता है।

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥२५

मनुष्य को अधिक सीधा भी न होना चाहिए, क्योंकि बन में जाकर देखो तो सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं, टेढ़े पेड़ सब खड़े रहते हैं।

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं
कस्माच्चिरात् दृश्यसे,
का वार्ता कुशलोसि बालसहितः
प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्
एवं ये समुपागतान्प्रणयिनः
प्रह्लादयन्त्यादरात्,
तेषां युक्तमशङ्कितेन मनसा
हर्म्याणि गन्तुं सदा ॥ ६ ॥

आइए, यहां पर विराजिए! यह आसन है, बहुत दिनों के पश्चात् दिखाई पड़े! क्या नई बात है! बालबच्चों सहित कुशल से तो हो? मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ! इस प्रकार जो घर पर आये हुए का आदर से स्वागत करता है उसके घर पर निःशङ्क मन से सदा जाना चाहिए।

अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरोभवति।
मलयेभिल्लपुरंध्रीचन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते ॥७॥

बहुत जान पहचान से और बहुत आने जाने से अनादर होता है, जैसे मलयाचल पर भील की स्त्री चन्दन की लकड़ियां जलाती है।

दीर्घदर्शी सदा च स्यात्प्रत्युत्पन्नमतिः क्वचित्।
साहसी सालसी चैव चिरकारी भवेन्नहि ॥८॥

मनुष्य को बहुत दूर तक देखने वाला और समय पर सोचने वाला बनना चाहिए। असाहसी, आलसी और देर में सोचने वाला न बनना चाहिए।

न दर्शयेत्स्वाभिमतमनुभूताद्विना सदा।
अविचार्योत्तरं देयं सहसा न वदेत्क्वचित् ॥ ९ ॥

बिना अनुभव के किसी बात में अपनी सम्मति न प्रकट करे, विचार करके उत्तर देना चाहिए और शीघ्र कुछ न कह डाले।

मथुरा १ सितम्बर सन् १९४७ ई०

अधीरता एक छिछोरपन है।

अधीरता की अशांत दशा में कोई व्यक्ति न तो सांसारिक उन्नति कर सकता है और न आध्यात्मिक। कारण यह है कि उन्नति के लिए, ऊंचा उठाने के लिए, आगे बढ़ने के लिए, जिस बलकी आवश्यकता होती है, वह बल मानसिक अस्थिरता के कारण एकत्रित नहीं हो पाता। जब हाथ कांप रहा हो उस समय बन्दूक का ठीक निशाना नहीं साधा जा सकता। आवेश की दशा में मानसिक कम्पन की अधिकता रहती है। उस उद्विग्नता की दशामें यह नहीं सूझ पड़ता कि क्या करना चाहिए, क्या न करना चाहिए।

अधीर होना, हृदय की संकीर्णता और अत्मिक बालकपन का चिन्ह है। बच्चे जब बाग लगाने का खेल खेलते हैं तो उनकी कार्य प्रणाली बड़ी विचित्र होती है। अभी बीज बोया, अभी उसमें खाद पानी लगाया, अभी दो-चार मिनट के बाद ही बीज को उलट-पलट कर देखते हैं कि बीज में से अंकुर फूटा या नहीं। जब अंकुर नहीं दीखता तो उसे फिर झाड़ देते हैं और दो-चार मिनट बाद फिर देखते हैं। इस प्रकार कई बार देखने पर भी जब वृक्ष उत्पन्न होने की उनकी कल्पना पूरी नहीं होती तो सारा उपाय काममें लाते हैं। वृक्षों की टहनियां तोड़कर मिट्टी में गाढ़ देते हैं और उससे बाग की लालसा को बुझाने का प्रयत्न करते हैं। उन टहनियों के पत्ते उठा-उठा कर देखते हैं कि फल लगे या नहीं। यदि दस बीस मिनट में फल नहीं लगते तो कङ्कड़ों को डोरे से बांध कर टहनियों में लटका देते हैं। इस अधूरे बाग से उन्हें तृप्ति नहीं मिलती। फलतः कुछ देर बाद उस बाग को बिगाड़ बिगूड़ कर चले जाते हैं। कितने ही जवान और वृद्ध पुरुष भी उसी प्रकार की बाल-क्रीड़ाएं अपने क्षेत्र में किया करते हैं हैं किसी काम को बड़े उत्साह से आरम्भ करते हैं, इस उत्साह की—अति 'उतावली' बन जाती है। कार्य आरम्भ हुए देर नहीं होती कि यह देखने लगते हैं कि सफलता में अभी कितनी देर है। जरा भी प्रतीक्षा उन्हें सहन नहीं होती। जब उन्हें थोड़े ही समय में रङ्गीन कल्पनाएं पूरी होती नहीं दीखतीं तो निराश होकर उसे छोड़ बैठते हैं। अनेकों कार्यों को आरंभ करना और उन्हें बिगाड़ना—ऐसी ही बाल-क्रीड़ाऐं वे जीवन भर करते रहते हैं। छोटे बच्चे अपनी अकांक्षा और इच्छा पूर्ति के बीच में किसी कठिनाई, दूरी या देरी की कल्पना नहीं कर पाते, इन बाल-क्रीडा करने वाले अधीर पुरुषों की भी मनोभूमि ऐसी ही होती है। यदि हथेली पर सरसों न जमी तो खेल बिगाड़ते हुए उन्हें कुछ देर नहीं लगती।

प्राचीन समय में जब शिष्य विद्याध्ययन के लिए जब गुरू के पास जाता था तो उसे पहले अपने धैर्य की परीक्षा देनी होती थी। गौएं चरानी पड़ती थीं, लकड़ियाँ चुननी पड़ती थीं, उपनिषदों में इस प्रकार की अनेकों कथाऐं हैं। इन्द्र को भी लम्बी अवधि तक इसी प्रकार तपस्या पूर्ण प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, जब वह अपने धैर्य की परीक्षा दे चुका, तब उसे आवश्यक विद्या प्राप्त हुई। प्राचीन काल में विज्ञ पुरुष जानते थे कि धैर्यवान् पुरुष ही किसी कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, इस लिये धैर्यवान् स्वभाव

वाले छात्रों को ही विद्याध्ययन कराते थे। क्योंकि उनके पढ़ाने का परिश्रम भी अधिकारी छात्रों द्वारा ही सफल हो सकता था। चञ्चल चित्त वाले, अधीर स्वभाव के, मनुष्य का पढ़ना न पढ़ना बराबर है। अक्षर ज्ञान होजाने या अमुक कक्षा का सार्टीफिकेट ले लेने से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। प्रमाण प्रत्यक्ष है। आज लाखों करोड़ों 'पढ़े गधे' इधर से उधर घूरे के तिनके चरकर लदते मरते रहते हैं। कोई कहने लायक पुरुषार्थ उनसे नहीं हो पाता।

आतुरता एवं उतावली का स्वभाव जीवन को असफल बनाने वाला एक भयंकर खतरा है। कर्म का परिपाक होने में समय लगता है। रुई कपड़े के रूप तक पहुंचने के लिए कई कड़ी मञ्जिलें पार करनी होती हैं और कठोर व्यमिधान्नोंमें होकर गुजरना पड़ताहै, जो संक्रांति काल के मध्यवर्ती कार्य-क्रम को धैर्य पूर्वक पूरा होने देने की जो प्रतीक्षा नहीं कर सकता, उसे रुई को कपड़े के रूप में देखने की आशा न करनी चाहिये। किया हुआ परिश्रम एक विशिष्ठ प्रक्रिया के द्वारा फल बनता है। इसमें देर लगती है और कठिनाई भी आती है। कभी-कभी परिस्थिति वश यह देरी और कठिनाई आवश्यकता से अधिक भी हो सकती है। उसे पार करने के लिए समय और श्रम लगाना पड़ता है। कभी-कभी तो कई बार का प्रयत्न भी सफलता तक नहीं ले पहुंचता, तब अनेक बार अधिक समय तक अविचल धैर्य के साथ जुटे रह कर अभीष्ठ सिद्धि को प्राप्त करना होता है। आतुर मनुष्य इतनी दृढ़ता नहीं रखते, जरासी कठिनाई या देरी से वे घबरा जाते हैं और मैदान छोड़कर भाग निकलते हैं। यही भगोड़ापन उनकी पराजयों का इतिहास बनता जाता है।

चित्त का एक काम पर न जमना, संशय और सङ्कल्प विकल्पों में पड़े रहना एक प्रकार का मानसिक रोग है। यदि काम पूरा न होपाया तो? यदि कोई आकस्मिक आपत्ति आगई तो? यदि फल उलटा निकला तो? इस प्रकार की दुविधा पूर्ण आशङ्कायें मनको डांवाडोल बनाये रहती हैं। पूरा आकर्षण और विश्वास न रहने के कारण मन उचटा-उचटा सा रहता है। जो काम हाथ में लिया हुआ है, उस पर निष्ठा नहीं होती। इस लिये आधे मन से वह किया जाता है। आधा मन दूसरे नये काम की खोज में लगा रहता है। इस डांवाडोल स्थिति में एक भी काम पूरा नहीं हो पाता। हाथ के काम में सफलता नहीं मिलती। बल्कि उल्टी भूल होती जाती हैं, ठोकर पर ठोकर लगती जाती हैं। दूसरी ओर आधे मनसे जो नया काम तलाश किया जाता है, उसके हानि लाभों का भी पूरी तरह नहीं विचारा जा सकता। अधूरी कल्पना के आधार पर नया काम वास्तविक रूप में नहीं वरन् अलंकारिक रूप में दिखाई पड़ता है। पहले कामको छोड़कर नया पकड़ लेने पर फिर उस नये काम की भी वही गति होती है जो पुराने की थी। कुछ समय बाद उसे भी छोड़ कर नया ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार 'काम शुरू करना और उसे अधूरा छोड़ना' इस कार्य-क्रम की बराबर पुनरावृत्ति होती रहती है और अन्त में मनुष्य अपने असफल जीवन पर पश्चाताप करता हुआ, इस दुनियां से कूंच कर जाता है।

अधिकार पाकर उनका दुरुपयोग या अन्याय करना ही परीक्षा में असफल होना है और अनेक कष्टों और कठिनाइयों के पड़ने पर भी अपने धर्म और न्याय पर डटे रहना परीक्षा में सफल होना है।

+ + +

यदि तुम्हारा प्रेम किसी से भी साँसारिक स्वार्थ और वासना रहित है, तो तुम्हें शान्ति ही शान्ति, आनन्द ही आनन्द मिलेगा और यदि उसमें स्वार्थ और वासना ही प्रधान है तो कोई भी शक्ति तुम्हें दुखी होने से नहीं रोक सकती।

परलोक कहां है ?

स्वः लोक अपने अंदर है ।

अपने आपमें, अपने अन्तःकरण में एक जबरदस्त लोक मौजूद है । उस लोक की स्थिति इतनी महत्व पूर्ण है कि उसके सामने भू लोक और भुवः लोक तुच्छ है । निस्संदेह बाहर की परिस्थितियां मनुष्य को आन्दोलित, तरंगित तथा विचलित करती हैं । परन्तु संसार के समस्त पदार्थों का जितना भला या बुरा प्रभाव होता है उससे अनेकों गुना प्रभाव अपने निज के विचारों तथा विश्वासों द्वारा होता है ।

गीता में कहा है कि—मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है । कोई मित्र इतनी सहायता नहीं कर सकता जितनी कि मनुष्य स्वयं अपनी सहायता कर सकता है । इसी प्रकार कोई दूसरा उतनी शत्रुता नहीं कर सकता जितनी कि मनुष्य खुद अपने आप अपने से शत्रुता करता है । अपनी कल्पना शक्ति, विचार और विश्वास के आधार पर मनुष्य अपनी एक दुनियां निर्माण करता है । वही दुनियाँ उसे वास्तविक सुख दुख दिखाया करती है ।

एक व्यक्ति सुनसान रात में मरघट के पास से निकलता है । उसके मन में कोई आशङ्का नहीं, तारागणों की सुन्दरता निहारता हुआ, रात्रि की नीरवता और शीतलता को निरखता हुआ, मन्द स्वर से गीत गुनगुनाता हुआ खुशी खुशी चला जाता है । परन्तु दूसरा व्यक्ति उसी रास्ते जाता है तो मरघट में भूत लोटते दिखाई पड़ते हैं, झाड़ियों में से मसानी और चुड़ैलें झांकती दीखती हैं, उनके मारे थर थर पैर कांपने लगते हैं, कण्ठ सूख जाता है, निगाह चूकने से एक पेड़ के ठूंठ से टकरा जाता है । बस भूत के भयङ्कर आक्रमण का प्रत्यक्ष दृश्य दिखाई पड़ता है । वह बीमार पड़ जाता है, महीनों चारपाई सेता है, मुश्किल से अच्छा हो पाता है या मर जाता है । रास्ता वही था, रात वही थी, एक आदमी खुशी खुशी उसी रास्ते चला आया, दूसरे आदमी की जान पर बन आई । यह भेद क्यों हुआ ? इसका कारण मनुष्यों की भिन्न मानसिक स्थिति थी । जिसके मन में से भय उत्पन्न हुआ वह भय ही उनकी छाती पर भयङ्कर मसान बन कर चढ़ बैठा और उसे प्राण घातक सङ्कट में फांस दिया ।

रस्सी को सांप समझ कर अनेक आदमी भयभीत होकर मूर्छित होजाते हैं । चूहे के काट जाने पर अपने आपको सांप का काटा समझ कर कई मनुष्य मृत्यु के मुखमें चले जाते हैं । साधारण रोग को असाध्य रोग मान कर अनेकों रोगी घबरा जाते हैं और वह घबराहट ही उनकी जान की गाहक बन जाती है । यह आफत के पहाड़ कौन ढाता है ? मनुष्य अपने आप अपने विचार बल से उन आफत के पहाड़ों का निर्माण करता है और खुद अपने ऊपर पटक कर स्वयंमेव चकनाचूर हो जाता है । मनुष्य के मनमें प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है वह इस शक्ति द्वारा अपने लिये अत्यन्त अनिष्ट कर और अत्यन्त उपयोगी तथ्य निर्मित कर सकता है ।

हर मनुष्य की अपनी एक अलग दुनियां होती है । जानकारी, इच्छा, एवं कल्पना के आधार पर हम अपनी मनो-भूमिका, निर्माण करते हैं । यह मनोभूमिका ही अपनी दुनियां है । इसमें जैसे इरादे, मनसूबे, यकीदे जम जाते हैं उसी दृष्टिकोण से संसार के समस्त पदार्थों को वह देखता है । आंखों पर पीला चश्मा पहन लेने से सभी दुनियां पीली दिखाई पड़ती है और नीला चश्मा पहन लेने पर हर चीज नीली दीखने लगती है। साधुओं की दृष्टि में यह संसार परमात्मा की पुनीत प्रतिमा है, सिंह की दृष्टि में सब मनुष्य स्वादिष्ट मांस के चलने फिरते लोथड़े हैं, दुकानदारों की निगाह में ग्राहक, वेश्या की दृष्टि में व्यभिचारी,

कलार की दृष्टि में नशेबाज, इस दुनियां में भरे हुए हैं। भीतरी मन की दुनियां जैसी होती है बाहर की दुनियाँ भी उसी के अनुरूप दिखाई देने लगती है।

मनुष्य को अपनी रुचि जिधर होती है, उधर ही उसका मस्तिष्क ढूंढ खोज जारी रखता है। और यह एक प्रकट तथ्य है कि जो कुछ ढूंढ़ा जाता है वह मिलता है। अपने स्वभाव और विचारों के मनुष्यों को, स्थानों को, वातावरणों को, उसकी अदृश्य चेतना ढूंढ़ती रहती है। और धीरे धीरे उसे अपने अनुकूलल वातावरण मिल जाता है। चोरों को अपने साथी अन्य चोरों का सहयोग हर जगह मिल जाता है और वे चाहे कहीं चले जांय चोरी करने का अवसर या स्थान भी मिल जाता है। इसी प्रकार भले, बुरी, सभी प्रकृति के मनुष्य अपने रुचिकर स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। सांसारिक परिस्थितियां दोनों ही प्रकार की होती हैं। सात्विक परिस्थि-तियों में सुख शान्ति, प्रसन्नता तथा तृप्ति का अनुभव होता है। इसके विपरीत तामसिक परिस्थितियों में क्लेस अशांति दुख, दरिद्र, तथा असन्तोष छाया रहता है, चोर स्वभाव का मनुष्य चोरी करेगा, फल स्वरूप उसे भय, अशान्ति, निन्दा, अविश्वास, राज दण्ड एवं कर्म के कठोर परिपाक का भागी बनना पड़ेगा। इसी प्रकार सदाचारी स्वभाव का मनुष्य सतकर्म करेगा और फल स्वरूप प्रसन्नता, सन्तोष, प्रशंसा, विश्वास, स्वास्थ्य एवं समृद्धि प्राप्त करेगा। चोर को अपने स्वभाव के लोगों के बीच रहना पड़ेगा और उनका व्यवहार उसके साथ वैसा ही दुख दायक रहेगा जैसा दुष्टों के साथ दुष्टों का रहता है। इसके विपरीत सज्जन पुरुष के समीपवर्ती लोग भी वैसे ही होंगे और उनका व्यवहार वैसा ही संतोष जनक रहेगा जैसा सज्जनों का होता है।

चोर और सदाचारी को जो सांसारिक विपरीत हैं। परन्तु इसका मूल कारण मनुष्य का अपना मन है। वह चोर स्वभाव को अपनावे या सदाचार की ओर झुके यह पूर्णतया उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर है। मनः लोक का जैसा निर्माण किया जाता है बाहरी दुनियाँ वैसी ही बन जाती है। मन में यदि शान्ति है तो बाहर भी शान्ति का वातावरण होगा यदि मनमें आकुलता है तो बाहर भी आकुलता से भरी हुई घटनाएं चारों ओर मंढ़रा रही होंगी। जिसने मनः लोकमें स्वर्ग स्थापितकर लिया है उसके लिए इस संसार में सर्वत्र स्वर्ग है, जिसके मन में नरक है उसे सब ओर नरक की ज्वाला जलती हुई दृष्टि गोचर होती रहेगी।

संसार के समस्त दुख मिलकर मनुष्य को उतना दुखी नहीं कर सकते जितना कि भीतर के अन्तर्द्वन्द उसे दुखी करते हैं। मृत्यु स्वयं उतना कष्ट नहीं देती जितनी कि मृत्यु का भय दुखी बनाता है। व्यापार में घाटा होजाने पर भी एक व्यापारी के सामने ऐसा अवसर नहीं आता कि उसे जीवन यापन में असुविधा हो। तो भी वह इतनी चिन्ता करता है कि सूखकर कांटा होजाता है। उस घाटे वाले व्यापारी की जो स्थिति है उससे भी बहुत गिरी हुई स्थिति के मजूर हंसते खेलते प्रसन्नता का जीवन बिताते हैं। घाटे वाले व्यापारी को सांसारिक विपत्ति वास्तव में नहीं आई, केवल उसके मनमें विपत्ति की एक झाड़ी उग आई। ईर्षा, द्वेष, घृणा, शोक, चिन्ता, कुढ़न, निराशा, भय, आशङ्का, प्रतिहिंसा स्पर्धा, आदि दुर्भावों के कारण कितने ही मनुष्य बुरी तरह व्याकुल रहते हैं, उनके मन में सदा एक बेचैनी, आकुलता, अशान्ति, एवं पीड़ा उठती रहती है, जिनके कारण उनका मनः लोक बहुत ही नीरस, गन्दा, शुष्क धुंधला एवं अन्धकार पूर्ण होजाता है। उन्हें हर घड़ी अशान्ति घेरे रहती है।

काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर अहंकार

व्यभिचार आदि के कुविचार एक प्रकार के मानसिक शत्रु हैं वे मनः लोक में निशाचरों की भांति छिपे बैठे रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, छल बल सहित पूरी तैयारी के साथ निकल पड़ते हैं और जीवन के सुकोमल तन्तुओं को अस्त व्यस्त कर डालते हैं। जैसे पेट में कोई विषैला पदार्थ पहुंच जाय तो वहां बड़ी जलन होती है, दस्त या उलटी होने लगती है । रक्त में कोई विषैला विजातीय पदार्थ पहुंच जाय तो फोड़े फुन्सी चकत्ते, कोढ़ आदि पैदा हो जाता है । मांस में कांटा घुस जाय तो जब तक वह निकल नहीं जाता निरन्तर पीड़ा होती रहती है । ठीक यही हाल इन कुविचार रूपी तामसिक,नीच,विजातीय, दानवों के मनः लोक में घुस जाने से होता है, यह कुछ न कुछ खुद-बुद किया ही करते हैं। आंख में पड़ी हुई कंकड़ी की भांति वे अन्तः चेतना को हर समय घायल ही करते रहते हैं। जैसे कोई आदमी लाल मिर्चों की बुकनी मर्म छिद्रों में भर लेने के बाद तड़पता फिरता है, चैन और आराम उसके लिए स्वप्न होजाता है वैसे ही दुस्वभावों को अन्तः करण में स्थान देने से आत्मा में तीव्र जलन होती रहती हैं, शान्ति के दर्शन दुर्लभ होजाते हैं ऐसी स्थिति मानसिक नरक ही कही जायगी।

मानसिक स्वर्ग का अर्थ है अपने अन्तःकरण में सात्विक विचारों सद्भावों और सद्गुणों को धारण करना। ईमानदारी की पवित्रता हिमि सी शीतल, पुष्प सी कोमल, चन्दन सी सुगन्धित और नवनीत सी स्वच्छ होती है उसे धारण करते ही आत्मा को बड़ी राहत मिलती है । हिमालय की तपो भूमि में नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य देखते हुए कन्द मूल फल खाते हुए, भगवती भागीरथी के तट पर निवास करने वाले तपस्वियों को जो शान्ति मिलती है उसी शान्ति को हम ईमानदारी की पवित्रता ग्रहण करके प्राप्त कर सकते हैं। सच्चा मनुष्य विश्वास करता है कि—"ईमानदारी का पवित्र जीवन ही मुझे जीना है, मैं सच्चाई और नेकी से भरे हुए ही अपने विचार रखूंगा, न्याय के ऊपर ही मेरी जीवन नीति निर्भर रहेगी, मैं सत्य को ही सोचूंगा, सत्य के आधार पर ही विचार करूंगा, भलाई नेकी, उदारता और क्षमा का आश्रय ग्रहण करूंगा कुविचार पाप, द्वेष और तुच्छ स्वार्थों से ऊंचा उठकर आध्यात्मिक जीवन जीऊंगा। यह भावनाएं उसके अन्तःकरण में सात्विकता का शीतल झरना प्रवाहित कर देती हैं।

सत्य, प्रेम और न्याय के जीवन तन्तुओं को झंकृत करते ही आत्मा में एक मधुर संगीत बजने लगता है। पवित्रता का आध्यात्मिक संगीत ही भगवान कृष्ण की त्रिभुवन मोहिनी मुरली का मधुर वेणु नाद है। इसका रस जिसने अनुभव किया है वह धन्य है। आत्मा पवित्र है, उसका मनुष्य के लिए सन्देश है कि "पवित्रता को विचार और कार्यों में ओत प्रोत करे" यह ईश्वरीय सन्देश जिसने सुन लिया वह बड़ भागी है,जिसने सुनकर हृदयंगम कर लिया और तदनुकूल आचरण करना आरम्भ कर दिया वह परमात्मा का सच्चा भक्त है। ऐसे भक्तों के बीच में ही भगवान खेला करते हैं। जिनका हृदय पवित्रता की भावनाओं से भरपूर है वह ईश्वरी लीलाओं का क्रीड़ा क्षेत्र है। महात्मा ईसा कहा करते थे कि इस पृथ्वी का स्वर्ग भोले बालकों में मौजूद है। सचमुच जिनका हृदय बालकों की तरह कोमल एवं पवित्र है वे स्वयं स्वर्ग रूप हैं, स्वर्ग में जाने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता नहीं, क्यों कि जिन तथ्यों के आधार पर स्वर्ग के सुख का निर्माण होता है वे दृश्य इसके हृदय में मौजूद हैं और हर घड़ी स्वर्ग के सुख को उत्पन्न करते रहते हैं।

जो दूसरों को कष्ट में देखकर दया से द्रवित होजाता है, जो असहायों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहता है, जो संसार के सुख में अपना सुख अनुभव करता है, दूसरों को हानि पहुंचाने की जिसे कभी इच्छा नहीं होती, सत्य की बढ़ोतरी देखकर जिसे आन्तरिक सुख होता है,

जिसे पर स्त्री माता के तुल्य हैं, जो पर धन को धूलि के तुल्य समझता है, इन्द्रियों को जो मर्यादा से बाहर नहीं जाने देता, चुगली, निन्दा, ईर्षा, एवं कुढ़न से जो दूर रहता है,संयम जिसका व्रत है, प्रेम करना जिसका स्वभाव है, मधुरता जिसके होठों से टपकती है, स्नेह एवं सज्जनता से जिसकी आंखें भरी रहती हैं, जिसके मनमें केवल सद्भाव ही निवास करते हैं, अनीति की ओर झुकने का जिसे कभी लालच नहीं आता, सादगी सरलता, शिष्टता जिसके रहन सहन की अंग होती है, ऐसे पवित्र आत्मा व्यक्ति इस लोक के देवता हैं। वे जहां रहेंगे, छाया की तरह उनका स्वर्ग उनके साथ रहेगा।

अन्तः करण की शान्ति बाहरी दुनियां को स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण बना देती है। जिसके मन में सात्विकता है उसे दूसरों का धन, वैभव, ज्ञान, रूप, यौवन, देखकर प्रसन्नता होगी कि परमात्मा के इस पुनीत उद्यान का एक पौदा सुविकसित तथा पल्लवित होरहा है, उस नयनाभिराम दृश्य से शान्त पुरुष का हृदय तृप्त एवं प्रफुल्लित होजाता है। परन्तु जिसके मनमें अशान्ति व्याप रही है, ईर्षा की डायन नंगा नृत्य कर रही है उसे दूसरों की बढ़ोतरी नहीं सुहाती। भीतर ही भीतर भारी कुढ़न होती है और उस कुढ़न की अग्नि से उसकी छाती भभकने लगती है। जिसकी बढ़ोतरी हो रही है उसे नीचा दिखाने के लिए तरह तरह के षड़यन्त्र रचता है और अनिष्ट कर पथ पर अग्रसर होता है।

जो क्रोधी है उसे दूसरों की ओर से क्रोध पूर्ण व्यवहार अपने ऊपर होता हुआ दृष्टि गोचर होगा। जो अनुदार है उसके साथ में अन्य व्यक्तियों का अनुदारता पूर्ण व्यवहार होगा। झूंठे और लबार व्यक्ति जहां जांयगे वहीं देखेंगे कि उनके ऊपर अविश्वास एवं निन्दा की बौछार होरही है व्याभिचारी व्यक्ति को भले घरों में प्रवेश नहीं होने दिया जाता चुगलखोर और यहां की बात वहां करने वालों के सामने लोग अपने मन की बात नहीं करते। बेईमान आदमी के कार्यों को लोग अविश्वास के साथ देखते हैं और जब तक अनेक प्रकार जांच पड़ताल नहीं कर लेते, तब तक भरोसा नहीं करते। इस प्रकार के अपमान जनक व्यवहार दूसरों की ओर से होते देखकर आम तौर से लोग मन ही मन कुड़ कुड़ाते हैं और जमाने को, युग को, लोगों को, दुनियां को दोष देते हैं। परन्तु वे अपने निजी दोषों को देखना भूल जाते हैं। वास्तव में अपने निजी दोष असुखकर, अप्रिय, अपमान जनक, संघर्ष मय वातावरण उत्पन्न करते हैं। यदि अपने हृदय में सात्विकता की पर्याप्त मात्रा विद्यमान हो तो दुनियां की ओर से अधिकांश आक्रमण तो अपने आप ही बन्द होजाते हैं। जो थोड़े बहुत आक्रमण नितान्त दुष्टों की ओर से किये जाते हैं वे प्रायः असफल होते हैं। यदि उन आक्रमणों से कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो वह धर्म-प्रतिरोध करता है। इन आक्रमणों या प्रतिरोधों में उसकी मानसिक शान्ति नष्ट नहीं हो पाती।

स्वः लोक का स्वर्ग अपने भीतर है। यदि हम प्रेम, उदारता ईमानदारी और भलमनसाहत का व्यवहार दूसरों से करें तो दूसरों के हृदयों में से भी वैसी ही आवाज हमारे लिए आवेगी। अपने मनमें पवित्रता, निष्कपटता, सत्यता,संयम, एवं निस्वार्थता के भाव विद्यमान हों तो वे सद्भाव ही अपने को सदा प्रफुल्लित एवं सन्तुष्ट रख सकते हैं। बारहसिंगा की नाभि में कस्तूरी होती है, वह अपने ही अन्दर नन्दन बन की सुगन्धि का रसास्वादन करता है। जिस सुगन्ध के लिए दूसरे लोग तरसते हैं और प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं वह बारहसिंगा को अपने अन्दर ही मिल जाती है वह अपनी मस्ती में मस्त हुआ उछलता फिरता है। फिर तुम्हीं दिन रात दूसरों को हानि पहुंचा ने के दुष्प्रयत्नों में मग्न रह कर अपने हृदय को अशान्त क्यों रखते हो ? चलो, अपने स्वः लोक को पहचानो और उसमें प्रवेश करो।

———

अध्यात्म अनावश्यक नहीं है

हमारे सामने कई बार ऐसे प्रश्न उपस्थित किये जाते हैं कि "अध्यात्म की शिक्षा बुड्ढों के लिए हैं। युवकों को तो दूसरी शिक्षाएं दी जानी चाहिए।" दूसरी शिक्षाओं से उनका तात्पर्य व्यापार, युद्ध, लेखन, भाषण, शिल्प आदि से होता है। अध्यात्म को ये युवकों लिए अनुपयोगी ही नहीं प्रत्युत हानिकर मानते हैं।

ऐसे प्रश्न कर्ताओं का दृष्टिकोण एक हद तक ठीक भी है। अध्यात्म का लोक व्यापी रूप, कथा, कीर्तन, हवन, जप, पूजा, प्रक्षालन, स्तोत्र, तिलक, छाप, स्नान, ध्यान, तीर्थ, श्राद्ध, तर्पण, शंख, घड़ियाल आदि कर्मकाण्डों तक सीमित है। लोग इसी को अध्यात्म समझते हैं। वे देखते हैं कि अनेकों कर्मकाण्डी-जो दीर्घकाल तक इस विधि व्यवस्था में तल्लीन रहे हैं कोई भौतिक या आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाते। पंडे, पुजारी, कथावाचक, संत, महन्त साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मनुष्यता की दृष्टिसे गिरे दर्जे के देखे जाते हैं। इन सब बातों को देखते हुए प्रश्न कर्ताओं का यह अभिमत ठीक ही जंचता है कि कब्र में पैर लटकाये हुए बुड्ढे टुड्ढे जिन्हें खांसने और चारपाई पर पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं इस अध्यात्म का सेवन करते रहें। युवकों को इसकी जरूरत नहीं। परलोक के संदिग्ध सपने देखने की अपेक्षा युवकों को तो जननी जन्म भूमि को स्वर्गा दपि गरीयसी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न कर्ताओं का जैसा अभिमत है कि धार्मिक कर्मकाण्ड ही अध्यात्म है। यदि वस्तुतः वैसी ही बात होती तो हमें उनके मत को अस्वीकार करने में तनिक भी आपत्ति न होती, क्यों कि हमारे अपने जीवन में हजारों लाखों अध्यात्मिक कहे जाने वाले व्यक्ति सम्पर्क में आये हैं। उनमें, दंभ, अहंकार, असत्य, छल, कायरता, चाटुकारता, पुजवाने की इच्छा, दीनता, अव्यवस्था, नशेबाजी आदि अनेकों दुर्गुण इतनी मात्रा में देखे जाते हैं जिसकी तुलना में उनका अध्यात्मिक ज्ञान या वेष नगण्य सा दीखता है। ऐसी दशा में हम इन प्रश्न कर्ताओं के अभिमत से किस प्रकार असहमत होसकते हैं जो युवकों को अध्यात्म से अलग रखने का अभिमत प्रकट करते हैं।

परन्तु वस्तु स्थिति दूसरी है। अध्यात्म का वास्तविक अभिप्राय-'आत्मा के असली स्वरूप का-सत् चित् आनन्द का विकाश करना है।' आत्मा का जो धर्म है जो स्वभाव है वह प्रायः मनुष्यों में पूर्ण रूपेण दृष्टिगोचर नहीं होता। उसी अविकसित अंश को विकसित करने के लिए अध्यात्मिक ज्ञान एवं साधन का प्रतिष्ठापन किया जाता है। मनुष्य सतोगुणी बने, चैतन्य बने, प्रसन्न रखने वाले स्वभावों और गुणों से सम्पन्न हो यह सच्चे अध्यात्म का कार्यक्षेत्र है।

सेवा, सहृदयता, कर्तव्य परायणता, जागरूकता, संयम, शीलता, एवं आत्म निर्भरता यह छै गुण मनुष्यता के लक्षण कहे जाते हैं। इस षट्गुण सम्पन्न मनुष्यता को एक शब्द में हम वास्तविक अध्यात्म कह सकते हैं। इस तत्व की उन्नति और रक्षा के लिए ही हमारे पूजनीय आचार्यों ने इस महा विज्ञान का अन्वेषण और आविष्कार किया था। पूजन भजन भी इस महा विज्ञान का एक छोटा सा अंग है, एक छोटा सा परिधान है। पर आज तो प्राण निकलगया है और परिधान की पूजा होरही है। सजीव षट्गुण मयी आध्यात्मिकता वहिष्कृत होरही है और उसके स्थान पर निर्जीव कर्मकाण्ड मयी अन्ध परम्परा प्रतिष्ठित होरही है। जैसी पूजा है वैसा ही फल मिलेगा। उस फल को देखकर आज अनेकों प्रश्नकर्ता हमारे सामने अध्यात्म की निरर्थकता उपस्थित करते हैं। उसे सुनकर रुष्ट या असंतुष्ट होने का हम कोई कारण नहीं देखते।

पर हमें वस्तु स्थिति को देखना और समझना होगा। अध्यात्म हमारे जीवन का मेरु दंड है

जिसके ऊपर प्रत्येक प्रकार की सफलता और सुस्थिरता निर्भर है। षट्गुण सम्पन्न मनुष्यता की वृद्धि और परिपक्वता के बिना अन्य सब योग्यताऐं बालू की भीति के समान है। उनके ऊपर कोई सुदृढ़ भवन खड़ा नहीं हो सकता। हर प्रकार की लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए सुदृढ़ व्यक्तित्व की, मानवोचित गुणों की आवश्यकता होती है। इन गुणों को विकसित करना ही आध्यात्म साधन या आत्म निर्माण कहलाता है। इस पथ की आरंभिक सीडिया प्राथमिक साधनाऐं यम, नियम हैं। दया पात्रों पर दया, सत्यव्यवहार, चोरी या छल न करना, शक्ति संचय, अत्यधिक लोभी न बनना, स्वच्छता, अनुद्विग्नता, परिश्रम शीलता, इन्द्रियों को वशवर्ती रखना, विद्या, कर्मफल की निश्चितता में विश्वास रखना, यह दश बातें यम और नियम हैं। इन पर आरूढ़ हुए बिना कोई व्यक्ति आध्यात्म जीवन में प्रवेश नहीं कर सकता।

यम नियमों के तथा षट्गुण सम्पन्न मनुष्यता विकाश के लिए अनेकों मार्ग हैं। आत्म निर्माण एवं लोक सेवा की सम्पूर्ण प्रवृत्तियां इसी उद्देश्य के लिए हैं। आत्म निर्माण के अनेकों साधनों में से एक साधन पूजन भजन, एवं धार्मिक कर्मकाण्ड परायणता भी है क्योंकि उनके द्वारा मन पर आस्तिकता के सात्विकता के संस्कार जमते हैं और मनुष्य सन्मार्ग की ओर अग्रसर होता है। यह कर्मकाण्ड एक प्रकार के आत्मिक व्यायाम हैं जिनके द्वारा आत्मबल की वृद्धि होती है। जैसे अमुक प्रकार का व्यायाम कोई व्यक्ति न करना चाहे और किसी अन्य प्रकार की कसरत करके शरीर को क्रिया शील रखे तो भी उसे स्वस्थता और सबलता का लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार विविधि धर्म सम्प्रदायों में विविधि प्रकार के कर्मकाण्ड प्रचलित हैं और सभी लोग अपने अपने तरीके से उद्देश्य की ओर बढ़ते हैं। कर्मकाण्ड साधन है, सात्विकता की, चैतन्यता की, आन्तरिक उल्लास की, अभिवृद्धि साध्य है। साध्य को प्राप्त करने के कई साधन या मार्ग हो सकते हैं। हमें साध्य का ध्यान रखना है।

इस षट्गुण सम्पन्न मनुष्यता की वृद्धि और सुरक्षा हर प्रकार की उन्नति के लिए आवश्यक है। सचाई, ईमानदारी खरा व्यवहार, औचित्य, समाज का हित इन बातों का ध्यान रखकर जो भी कार्य किये जाते हैं वे अधिक समय तक टिकते हैं, अधिक लाभ दायक होते हैं, अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, अपनी और दूसरों की सुख शान्ति में अधिक वृद्धि करते हैं। इसके विपरीत नैतिक दृष्टि से गिरे हुए मनुष्यों द्वारा जो भी काम होते हैं वे अस्थायी, थोड़े दिन चमक कर पीछे बिलकुल अस्त हो जाने वाले, निन्दनीय, अनीत वर्धक तथा विपत्ति उत्पन्न करने वाले होते हैं। योग्यताऐं एक प्रकार के शास्त्र हैं उनका परिणाम, उपयोग करने वाले की स्थिति के ऊपर निर्भर है। सुई से एक आदमी सुन्दर वस्त्र सी सकता है, दूसरा उसी सुई से किसी की आंखें फोड़कर भारी विपत्ति खड़ी कर सकता है। योग्यताऐं प्राप्त करना उचित है पर साथ ही उन योग्यताओं को धारण करने वाले की विवेक शीलता में अभिवृद्धि भी उचित है।

हम देखते हैं कि अनात्मवान व्यक्तियों के हाथ में जाकर योग्यताऐं, विपत्ति का कारण बन जाती हैं। डाकू के हाथ में जाकर बन्दूक कहर बरसाती है, चोरों का संगठन बन जाय तो वह आफत खड़ी कर देता है, बेईमान दुकानदार भली बुरी चीजें भेड़ कर ग्राहकों को दुख देता है, कायर सेना पति जीती बाजी को हरा देता है, एक रूपवती वेश्या अनेकों को व्यभिचारी बनादेती है। इसी प्रकार लेखनी की, वाणी की, विद्या बुद्धिकी योग्यताऐं अवांछनीय व्यक्तियों के हाथ में जाकर भयंकर परिणाम उपस्थित होती हैं। यदि यही शक्तियां, यही योग्यताऐं चरित्रवान व्यक्तियों के हाथ में हों तो उससे व्यक्तिगत और सामूहिक सुख शान्ति में वृद्धि होती है। इसलिए योग्यताओं की जितनी आवश्यकता है उससे

अधिक आवश्यकता इस बात की है कि उनके हाथ में योग्यता रूपी शस्त्र थमाया जाय वे उसके अधिकारी हों। यदि पात्रता उत्पन्न किये बिना शक्तियों का योग्यताओं का सम्पादन किया तो परिणाम बहुत बुरा होगा। परमाणु शक्ति जैसी महाशक्ति को प्राप्त करके मनुष्य ने उसका उपयोग नाश के लिए, विपत्ति के लिए ही किया है।

हमसे कहा जाता है कि युवकों को अध्यात्म की शिक्षा मत दीजिए। उन्हें व्यापार, युद्ध, चिकित्सा, शिल्प, विज्ञान, लेखन, भाषण, राजनीति आदि की शिक्षा दीजिए। इसके उत्तर में हमारा विनम्र निवेदन यही है कि इन सब शिक्षाओं की निश्चय ही आवश्यकता है और अनेक सरकारी अर्धसरकारी तथा धनीमानी सज्जनों द्वारा संचालित शिक्षालय इस प्रकार की शिक्षा दे भी रहे हैं। जिनके पास साधन हों वे अधिक तेजी से उन शिक्षाओं को जारी रखें, यहां तक तो सब कुछ ठीक है पर यह कथन ठीक नहीं कि युवकों को अध्यात्म की शिक्षा मत दीजिए। बिना मानवोचित गुणों का विकाश हुए सभी शिक्षाएं निरर्थक ही नहीं अपितु हानिकर भी साबित होंगी।

यदि प्रश्नकर्ता सज्जन अध्यात्म को पंडे, पुजारी, भिक्षुक, बाबाजी आदि तक सीमित रहने वाला कर्मकाण्ड समझते हैं तो उनके कथन के विरुद्ध हमारे पास कोई दलील नहीं है। पर सच्चा अध्यात्मवाद दूसरी वस्तु है वह जीवन का मेरुदंड है, उसके बिना कोई व्यक्ति सच्चे अर्थों में न तो उन्नतिशील बन सकता है और न सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है। वह आत्मा का भोजन है। अध्यात्म-जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति और सुखशान्ति का वैज्ञानिक साधन है इस साधन को अपनाने की जीवन क्षेत्र में प्रवेश करने वाले युवकों को ही सबसे अधिक आवश्यकता है।

श्रीगुरुदेव चरण कमलेभ्योनमः

(गोस्वामी श्री बिन्दुजी)

(१) गुरु ब्रह्मा है, क्यों कि जिज्ञासु के हृदय में विशुद्ध कल्पना की सृष्टि रचता है।

(२) गुरु विष्णु है, क्योंकि साधक के विश्वास, एवं उत्साह का पालन और पोषण करता रहता है।

(३) गुरु रुद्र है, क्योंकि शिष्य की कुप्रवृत्तियों का संहार किया करता है।

रत्न से जौहरी बड़ा है, क्योंकि जौहरी के बिना रत्न पहिचाना नहीं जा सकता। विद्या से अध्यापक बड़ा है, क्योंकि अध्यापक के बिना विद्या पढ़ी नहीं जा सकती। औषधि से वैद्य बड़ा है, क्योंकि वैद्य के बिना औषधि का सेवन नहीं हो सकता। इसी प्रकार ईश्वर से भी गुरु देव बड़े हैं, क्योंकि बिना गुरु देव के हमें ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु यदि जौहरी कहे कि, मैं ही रत्न हूं, मुझे ही खरीदो। तो लोग उसे पागल समझेंगे।

यदि अध्यापक कहे कि, मैं ही विद्या हूं, मुझे ही पढ़ो तो लड़के बस्ता बांधकर घर चल देंगे। यदि वैद्य कहे कि, मैंही औषधि हूं, मुझे ही पियो, तो रोगी वैद्य का ही इलाज करने लगेगा। इसी प्रकार यदि गुरू भी कहे कि, मैंही इस संसार का कर्त्ता, धर्त्ता संहर्त्ता हूं, मुझे ही ईश्वर मानो, तो शिष्य उसका उपहास ही करेंगे।

तात्पर्य यह है कि, यदि गुरुदेव हमें ईश्वर का बोध कराते हैं, तो वे ईश्वर से भी अधिक मान्य हैं, परन्तु यदि ईश्वर से भी अधिक अपनी महत्ता बतला कर, अपने ही पार्थिव की पूजा कराने लगें, तो अवश्य यह उनका ढोंग है, शिष्यों को ठगना है, अतः ऐसे गुरु देवों से मुमुक्षु जीवों को दूर ही रहना चाहिये।

बलिदान के लिए तैयार रहो

(देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी)

——:०:——

कल्पना करो एक नगर में एक मकान को आग लग गई है। यदि उस समय प्रत्येक मनुष्य अपने अपने मकान का बचाने की चिन्ता करे तो निश्चय ही सब के मकान जल जांयगे। वहां तो नियम ही यह है कि सब मिल कर नगर के उस एक मकान की आग बुझाएं। इस में सब का बचाव है। यदि प्लेग आदि कोई महामारी किसी देश में प्रवेश करती है, तो प्रत्येक मनुष्य अपनी रक्षा की सामग्री इकट्ठी कर के अपने आप को बचा नहीं सकता। वहां सब को मिल कर उन्हें रोकने का प्रबन्ध करना होगा। इसी प्रकार यदि कोई शत्रु किसी देश पर आक्रमण करता है, तो उस मनुष्य की वह चेष्टा व्यर्थ जाती है, जो अपने घर को बचाने का प्रयत्न करता है। जिस देश में लोग ऐसा करेंगे निश्चय ही वह नष्ट हो जायगा।

गत योरोपीय महासमर का उदाहरण लीजिए। जब आरम्भ में ही जर्मन सेना ने पेरिस पर धावा बोला और भय था कि वह उनके साथ में चला जायगा तब इंगलैण्ड ने क्या किया? इंगलैण्ड को भय हुआ कि आज पेरिस जर्मनी के हाथ जाता है, तो कल इंगलैण्ड की बारी आ जायगी। अपने आप को बचाने के लिए वह सब तरह की कुर्बानी करने पर उद्यत हो गया। इस्लामी आक्रमणकाल में हिन्दू राजाओं की क्या अवस्था थी? एक पर आक्रमण होता है और उस का पड़ोसी राजा तमाशा देखता है। इस स्वार्थ ने उन्हें नष्ट कर दिया। इसके विरुद्ध इंगलैण्ड के सब नवयुवकों ने विश्वविद्यालय छोड़ दिए। अमीर स्त्रियों ने प्रसादों में रहना त्याग दिया और सब रणक्षेत्र की तैयारी में लग गए। इकट्ठे मिल कर ही वे अपने देश को बचा सकते थे।

तुम्हारे मुकाबले पर ऐसी शक्तियं हैं, जो तुम्हारे उसका उपाय यह नहीं कि तुम पृथक् पृथक् होकर उनका सामना करो। इस में तुम्हारी मृत्यु है, यह बचने का साधन नहीं है। ऐसे और दृष्टान्त दिए जा सकते हैं। नियम यह है कि इस संसार में स्वार्थ कभी जाति का बचा नहीं सकता। इस लिए यह महा पाप है और पापों का मूल है।

स्वभावतः मनुष्य स्वार्थी है। परन्तु स्वार्थ से संसार नहीं चल सकता। वह जाति उन्नति करती है, जिस में स्वार्थ की जगह जातीय बलिदान का भाव हो जिस जाति के अन्दर जितना बलिदान-भाव अधिक होता है, उतनी ही वह अधिक उन्नति करती है। जितना यह भाव कम होता है, उतनी ही कम उन्नति होती है। सारांश में बलिदान-भाव को जाति के अन्दर जीवित रखना परमावश्यक है। इसलिए जो मनुष्य, चाहे उनकी संख्या थोड़ी हो, देश में परमार्थ या बलिदान का बीज कायम रखते हैं वे धर्म के मार्ग पर चलते हैं। प्रत्येक समाज क्योंकि इसी भाव पर आश्रित है, इसलिए धर्म करने वाले वे लोग हैं, जो संसार को चलाते हैं।

यदि हरिश्चन्द्र का नाम संसार से मिट जाय तो 'सत्य' केवल एक शब्द रह जाय। यदि हकीकत और ऐसे अन्य शहीद देश में न होते तो धर्म का बीज नष्ट हो जाता। तब जाति कैसे जीवित रहती? इस बलिदान परमार्थ के भाव को देश भक्ति कहा जाता है। इसे हम जातीय भाव कह सकते हैं। जब किसी जाति में यह भाव भर जाता है, तब उसमें जातीय जीवन उत्पन्न करना कठिन बात नहीं होती।

बीज के गले बिना नया वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता, प्रसव पीड़ा सहे बिना कोई स्त्री पुत्रवती होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकती। किसी भी देश और जाति का उज्वल इतिहास वहां के बलिदानी वीरों के उष्ण रक्त से लिखा जाता है। हम इतिहास के एक अध्याय में प्रवेश कर रहे हैं इसका सुदृढ़ निर्माण आदर्श वादी युवकों के त्याग और

वैदिक प्रार्थनाओं को अपनाइये

(श्री दौलतराम कटरहा बी० ए०)

प्राचीन काल में जब भारतीय विद्यार्थी गुरु-गृह में रहकर तथा ब्रह्मचर्य-सहित विद्याध्ययन समाप्त कर अपने घर लौटने लगते थे तब गुरु उन्हें उपदेश देते थे "धर्मान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्…" अर्थात् "धर्म कार्यों में प्रमाद न कर, कल्याणकारी कर्मों में प्रमाद न कर अपनी ऐश्वर्य-वृद्धि में प्रमाद न कर" इत्यादि और इस तरह भारतीय आचार्य-गण अपने शिष्यों को लौकिक जीवन में और अपने कर्त्तव्य-कर्मों में कुशलता-पूर्वक प्रवृत्त होने की शिक्षा देते थे न कि एक दम संन्यास के लेने की। वे अपने शिष्यों से साफ साफ कह देते थे कि विवाह कर गृहस्थ बनो और उत्तम संतान उत्पन्न करो। 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः' अर्थात् प्रजारूपी तंतु को मत तोड़ना, ऐसी उनकी आज्ञा होती थी। इस तरह उनकी आज्ञाओं में संतुलन होता था और वे परलोक और इह लोक दोनों को संवारने की शिक्षा देते थे। परलोक के पीछे इह लोक को बिलकुल भूल जाने का प्रयत्न करना उनका आदर्श नहीं था।

भारतीय ऋषियों की इस ईश्वर प्रार्थना से भी कि हमारी सारी मनोकामनाएं पूरी होती रहें, हम आनन्द में रहें (ॐ शन्नोदेवीरभिष्टय…) जिस जिस चीज को चाहते हुए हम आपका आश्रय लें वह हमें प्राप्त हो ताकि हम धन और ऐश्वर्य के स्वामी बनें (यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्) यह स्पष्ट है कि यदि हम भी भक्ति-भाव सहित लौकिक जीवन में अच्छी तरह प्रवृत्त हों और अपने लौकिक कल्याण के लिये इस तरह की प्रार्थना करें तो हमें भोगैश्वर्य-प्रसक्त कहकर ऐसी प्रार्थनाओं को आध्यात्मिक विकास के लिए हानिकर नहीं बताया जा सकता।

भारतीय ऋषियों के उपरोक्त दृष्टि-कोण को प्रायः भक्ति-भाव के विकास में बाधक समझा जाता है। लोग कहते हैं कि यह दृष्टिकोण उस काल का है जब कि आर्यों में सभ्यता का विकास हो रहा था और जब कि उन्हें लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व द्रविड़ आदि जातियों पर विजय प्राप्त करने के लिए ऐसी ही उल्लास और उमंग से भर देने वाली प्रार्थनाओं की आवश्यकता थी। किन्तु मैं समझता हूं कि इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि "सांसारिक वैभवादि मिथ्या हैं अतएव मनुष्य को इहलोक और लोक-लाज की परवाह न करके अपने परलोक को संवारने वाली भक्ति का ही आश्रय लेना चाहिये" इस तरह की विचार धारा भी उस जमाने की है जब कि प्राचीन आर्य जाति नवागन्तुक विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा पराजित होकर अपनी स्वतंत्रता को खो चुकी थी और निर्विघ्न रूप से अपने पौरुष और वीरता के गीत न गा सकती थी। अतएव इस घटना के कारण हमारे सामाजिक जीवन और साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा और इसके परिणाम स्वरूप हमने इस विचार धारा को अपनाया।

लौकिक और वैदिक कर्मों को त्याज्य बताने वाली जिस निरोध-स्वरूपा भक्ति का हमारे समाज में प्रचार हुआ वह हमारी लौकिक समस्याओं को सुलझाने वाली नहीं थी। हिंदुओं के मायावाद विवर्तवाद, प्रपत्तिवाद सम्बन्धी सिद्धान्त प्राचीन वैदिक ग्रंथों की तुलना में अधिक अर्वाचीन हैं अतएव यह भले ही समझा जावे कि ये सिद्धान्त आध्यात्मिक अनुभव की परमावधि के प्रतिबिम्ब हैं किंतु मैं समझता हूं कि एक विजित जाति के ये अनुभव सत्य भले ही हों किंतु वे हमें हमारी खोई हुई स्वतंत्रता और ऐश्वर्य पुनः प्राप्त करा सकेंगे यह संदेहास्पद है।

किसी भी व्यक्ति अथवा जाति के अनुभव केवल इसलिए प्रामाणिक भी नहीं हो सकते कि

जाति का इतिहास बहुत प्राचीन है। व्यक्तिगत तौर पर मैं यह मानता हूं कि जिसे पराजित मनोवृत्ति के लोग अपने जीवन का दीर्घकालीन बहुमूल्य अनुभव कहकर पुकारते हैं वह बहुधा उनकी भद्दी भूलें, दुष्कर्मों और दुर्भाग्यपूर्ण जीवन के 'रिकार्ड' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। क्या आप उस वृद्ध व्यक्ति के मत को मान्यता देकर उस पर आचरण करेंगे जो कि कहता है कि "बिना धूर्तता के द्रव्योपार्जन कर जीवन-यापन नहीं किया जा सकता?" अथवा क्या आप उस कमजोर व्यक्ति की बात को मान्यता देंगे जो कि कहता है कि-"झूठों का बोलबाला सदा ही और सब जगह रहता है अतएव बिना झूठ बोले संसार में सुख और शांति-पूर्वक नहीं रहा जा सकता।"

कमजोर व्यक्ति तो आपसे कहेगा कि सच्ची गवाही देने के कारण उसे दुश्मनों ने एक बार पीटा था इसलिए सच बोलकर दुनिया में नहीं रहा जा सकता किंतु बलवान व्यक्ति का अनुभव तो कुछ और ही होगा। वह तो कहेगा कि "सच बोलने के कारण उसके साहस और गुण की खूब प्रशंसा हुई थी और उसे खूब सम्मान प्राप्त हुआ था।" इन दोनों व्यक्तियों का अनुभव भिन्न २ है अतएव यह स्पष्ट है कि हमारे लिये जीवन में उन्नति की ओर उन्मुख बलवान और श्रेष्ठ व्यक्तियों के ही अनुभव ग्राह्य और उपादेय हो सकते हैं।

जिस जाति या व्यक्ति के सम्बन्ध में हम निश्चय पूर्वक जानते हैं कि उसका जीवन असफलता-पूर्ण रहा है उसके अनुभवों को हमें सतर्कतापूर्वक सुनना चाहिए, उसकी सलाहों से सावधान रहना चाहिए और उन्हें तब तक ग्रहण न करना चाहिए जब तक कि हमारी अन्तरात्मा भी उनके सही होने की साक्षी न दे। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर तथा इस उद्देश्य से [illegible] आर्य जातिका दृष्टिकोण पराजित आर्य जाति के दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिकहितप्रद होगा।

ऋग्वेद काल के आर्यों की प्रार्थनाएँ नवीन दृष्टिकोण की अपेक्षा, जब कि वे संसार को भूल कर केवल भक्ति की ही कामना किया करते थे, अधिक भौतिक अवश्य है किंतु वह संतुलित और संयत है। (ॐ अग्ने नय सुपथा राये''', आदि मंत्रों से स्तुति कर वे सारे जगत को प्रकाश करने वाले और सर्व विद्याओं के भांडार सुख-दाता ईश्वर से विज्ञान और राज्य आदि की प्राप्ति के लिये सीधे धर्म-युक्त मार्ग दिखाने की कामना अवश्य रखते हैं किंतु साथ साथ यह भी प्रार्थना करते हैं कि उनके कुटिलता से भरे पाप-कर्म दूर हों और वे परमात्मा की सदा स्तुति और प्रशंसा किया करें। उनकी इस प्रार्थना में संतुलन है और वह इहलोक और परलोक दोनों को संभालती है। कामनाएं रखने से आध्यात्मिक पतन तो तब होता है जब कि हम केवल कामनाएं ही करते हैं और धर्म को भूल जाते हैं।

भगवान विष्णु को षडगुणैश्वर्य संपन्न अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य, श्री और धर्म-संयुक्त कहा जाता है। भगवान के वैराग्य और ऐश्वर्य आदि गुणों में सम्यक् संतुलन है। अतः यदि हम भी भगवान के सच्चे भक्त या उपासक बनना चाहते हैं तो हमें उनके भर्ग को, उनके पवित्र तेज को और उनकी संतुलित गुणावलियों को अपनी आत्मा में धारण करना होगा। उपासना का अर्थ होता है, उपास्य का सान्निध्य प्राप्त करना या उनके निकट बैठना। अतएव हम भले ही अनेकों गुणों को अपने अंदर धारण कर लें किंतु यदि हम ऐश्वर्ययुक्त न होवेंगे तो हम भगवान विष्णु के सच्चे उपासक न कहला सकेंगे। भगवान तो स्वयं कहते हैं कि जो जो भी विभूतियुक्त, कांति-युक्ति और शक्तियुक्त वस्तु है उसे मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न हुई जानो। अतएव

राजराजेश्वर का कोई प्रियभक्त या पुत्र कभी कंगाल रह सकता है ?

ऐश्वर्यों को त्याग कर अपने आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ना महान पुरुषार्थ है। किंतु त्याग सदा प्राप्त वस्तु का ही होता है अतएव अप्राप्त ऐश्वर्य के त्याग को त्याग कह कर त्यागी बनने का दंभ करना घोर आत्म-प्रवंचना है। अतः वास्तविक त्यागी वही हो सकता है जिसमें ऐश्वर्यों को प्राप्तकर लेने की योग्यता और पुरुषार्थ हो। इसलिए जो व्यक्ति पुरुषार्थी और कर्मठ नहीं है और जिसका आध्यात्मिक विकास भी नहीं हुआ है वह व्यक्ति त्यागी नहीं हो सकता अतएव उसको सांसारिक वैभवादि मिथ्या हैं ऐसा उपदेश देनेकी अपेक्षा 'भूत्यै न प्रमादितव्यम्' ऐसा उपदेश देना ही श्रेयस्कर होगा। यदि कोई व्यक्ति अकर्मण्य है तो उसे मोक्ष आदि जीवन के उच्चतम पुरुषार्थ आकर्षित नहीं कर सकते।

मनुष्य की आवश्यकताएं ही उसे पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरणा देती हैं और इस प्रेरणा के फल-स्वरूप ही वह उन्नति करते करते जांगल-युग से सभ्यता के इस युग में आ पहुंचा है। अतएव पुरुष में उसके प्रसुप्त पुरुषार्थ को जाग्रत करा देना ही प्रकृति का एकमात्र लक्ष्य प्रतीत होता है और भौतिक उन्नति उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक साधन-मात्र है। इसलिए जब कभी भौतिक उन्नति के मिथ्यात्व और निस्सारता को दिखलाकर उसके प्रति हमारे हृदय में महात्मा लोग अरुचि पैदा करते हैं तो उनका प्रयोजन यही होता है कि हम क्रमशः भौतिक उन्नति की ओर से बढ़कर आध्यात्मिक उन्नति में पूर्णतया निरत हो जावें तथा यह समझ लें कि मोक्ष-प्राप्ति ही परमोच्च पुरुषार्थ है और उसके सामने अन्य पुरुषार्थ निस्सार से प्रतीत होते हैं।

भारतीय इतिहास में एक समय ऐसा आया जब कि गौरव-शाली आर्यों की पवित्र भूमि विदेशी आक्रमण कारियों द्वारा पद दलित होने लगी और हमारे वाङ्‌मयमें वीर-काव्य का अभाव होने लगा। हमारी भावनाओं को गहरी ठेस लगी और हमें सान्त्वना देने की क्षमता रखने वाले "संसार की असारता, कर्म की अपेक्षा भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता, पौरुष की अपेक्षा भाग्य की प्रबलता" आदि सिद्धान्तों की शिक्षा का प्रचार ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में खूब हुआ और बाद में इन्हीं बातों का प्रतिपादन करने वाले अनेकों विद्वान हुए जिनकी शिक्षा का प्रभाव यह हुआ कि हमारे समाज—रूपी उद्यान के श्रेष्ठतम कुसुम अभौतिक ईश्वर को रिझाने की चाह में पर्वतों और बनों में अपने सौरभ को नष्ट करते रहे तथा संन्यासी और विरागी बनकर देश-दशा के प्रति अपेक्षाकृत उदासीन और सामाजिक जीवन से पराङ्‌मुख होते रहे। भारतवासियों को उस शिक्षा ने लोरियां और थपकियां देकर सुलाने की कोशिश की, देश-दुर्दशा पर परदा डाल उसे भुलाने का प्रयत्न किया और लोग सोचने लगे कि हमारे इहलोक का वैभव तो क्षीण ही हो गया अतः अब हम कम से कम अपना परलोक ही क्यों न सुधार लें। विद्वानों ने माया-वाद का नारा लगाया और इस तरह अंगूर न प्राप्त कर सकने के कारण अंगूरों को ही खट्टा बतलाने वाली लोमड़ी जैसा आचरण हम से बन पड़ा।

यह मनोवृत्ति वैदिक काल के कर्मठ महर्षियों जैसी मनोवृत्ति नहीं थी किंतु यह तो विजित और कर्म-क्षेत्र में पराजित लोगों की मनोवृत्ति थी अतएव परिणाम यह हुआ कि नैराश्यपूर्ण भक्ति की आड़ में अकर्मण्यता का काफी प्रचार हुआ। इस समय देश का ध्यान यद्यपि अपने पुरुषार्थ और बल-विक्रम की ओर से हटकर ईश्वर की ओर गया किन्तु उसे शायद यह सुधि न रही कि ईश्वर की सहायता उसी को प्राप्त होती है जिसे अपनी शक्ति का भरोसा होता है और जो अपनी सहायता करना जानता है।

हमारे जीवन और साहित्य पर भी हमारी

पराजय का बड़ा विषाद-पूर्ण प्रभाव पड़ा। हमारी उस काल की विचार-धारा में वही प्रभाव परिलक्षित होता है। जिस गज के सम्बन्ध में कवि "निर्बल है बल राम पुकारयो, आए आधे नाम" का गान करता है वह गज वास्तव में उस समय का भारतीय हिंदू समाज ही था और इससे उस ज़माने की भक्ति भावना अपने वास्तविक रूप में प्रतिबिम्बित भी होती है। आर्त्त-भाव से हिंदू समाज ने विराग और भक्ति के सिद्धान्त को अपना कर खूब पल्लवित किया तथा उसे चरम सीमा तक पहुंचा दिया किंतु, वह तो उस समय कर्मानुराग और कर्म-प्रधान या कर्म-रूप भक्ति का ही अधिकारी था, कर्म-रहित भक्ति का नहीं। कर्म-रहित भक्ति ने जीवन-संग्राम में इस पराजित निराश और हतप्रभ जाति को लौकिक जीवन के प्रति और भी अधिक निरपेक्ष बनाया जिससे कि हम आज तक भी अकर्मण्यता और दासता के बंधनों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सके। अतएव आज हमें सांसारिक कर्त्तव्य कर्मों से निवृत्त कराने वाली शिक्षाओं की अपेक्षा उनमें प्रवृत्त कराने वाली वैदिक प्रार्थनाओं की ही अधिक आवश्यकता है।

प्रतिष्ठा का ध्यान रखना और बात है, तथा अपने को बड़ा समझना और बात है।

+ + +

संसार बलवान को ही नत मस्तक होता है उसी की प्रतिष्ठा और मान करता है, इसलिये यदि तुम अपनी प्रतिष्ठा और कीर्ति चाहते हो तो छोटे छोटे स्वार्थों का त्याग करके अपने आत्मिक, बौद्धिक, शारीरिक एवं सामाजिक बल को बढ़ाने का निरंतर प्रयत्न करते रहो।

+ + +

त्याग में कितना बल और सुख है और अनुचित संग्रह में कितनी निर्बलता एवं तकलीफ है। इसका ठीक ठीक अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है।

अमल कीजिये।

(प्रो० मोहनलाल वर्मा एम० ए० एल० एल० बी०)

घंटों निरर्थक बकवास करने से एक छोटे से तत्व या उपदेश पर अमल करना, अपनी आत्मा का विकास करना, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ना अधिक कल्याण कर है। बहुत सी बातें बनाना बड़ा सरल है, दूसरों को उपदेश देने में बहुततेरे कुशल होते हैं किन्तु वास्तविक तथ्य तो यह है कि जो बात अन्तःरात्मा को लगे, उसे कार्य रूप में परिणत कर प्रत्यक्ष किया जाय। कर्म ही संसार में मुख्य तत्व है। सफलता के लिए यदि कोई आवश्यक चीज़ है, तो वह कठोर कर्म ही है। केवल बातें बनाना, शेख़चिल्लियों तथा ढपोरशंखों का काम है। असली मनुष्य वही है, जो बात कम करता है किन्तु काम बहुत अधिक करता है।

उन्नति करना अपने आप पर आपने कार्यों पर ही निर्भर है, जो मनुष्य केवल दूसरों का मुंह ताकता और बातें बनाता है, वह भीतरी आत्म-शक्ति को व्यर्थ बरबाद करता है।

विचार दो प्रकार के होते हैं—केवल कल्पना ही कल्पना मनुष्य के लिए अहित कर है। हमारे विचारों में क्रिया का समन्वय अवश्य होना चाहिये। जो व्यक्ति उत्साह पूर्वक कार्य में प्रविष्ट होता है, वही विजयी भी होता है। जो केवल माला जपने में रहेगा, स्वयं परिश्रम न करेगा उसे कुछ भी प्राप्त न होगा। हम मानते हैं कि विचार में प्रबल शक्ति है, किन्तु विचार में शक्ति तब ही है, जब उसे अंकुरित होने का सुअवसर प्राप्त हो। जो विचारों के प्रवाह को अवरुद्ध करता है, वह अपनी उन्नति को पीछे धकेलता है। जो विचारों में क्रिया का योग नहीं देता, वह विचारों के अंकुरों को पल्लवित होने से, उन्हें फलित होने से रोकता है। [illegible]

महापुरुषों की संगति।

(श्री विश्वमित्र वर्मा)

———

आत्मोन्नति में उन महापुरुषों की संगति से हमें अधिक सहायता मिल सकती है जिन्होंने हमसे अधिक उन्नति करली है, हमसे अधिक बलवान विचार युक्त पुरुष हमें अधिक सहायता दे सकता है क्योंकि हम अपने विचारों द्वारा जो कम्पन उत्पन्न कर सकते हैं उससे भी अधिक उच्च कम्पन वह मनुष्य उत्पन्न करके बाह्यलोक में प्रेरित करता है। पृथ्वी पर पड़ा हुआ लोहे का टुकड़ा स्वयं ताप के कम्पों को आरंभ नहीं कर सकता किन्तु यदि वह अग्नि के समीप रखा हुआ हो तो वह अग्नि के उष्णकणों का प्रत्युत्तर दे सकता है और गरम हो सकता है। जब हम किसी बलवान विचार वाले पुरुष के समीप जाते हैं तब उसके विचारों की तरंगें हमारे मन पर विहार कर सजातीय कंप उत्पन्न करती हैं जिसके कारण हमारा स्वर उसके साथ मिल जाता है अर्थात् उस मनुष्य के और हमारे मनमें एक ही प्रकार के संकल्पों की प्रेरणा होती है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी मानसिक शक्ति बढ़ गई है और हममें ऐसे सूक्ष्म भावों को ग्रहण करने का सामर्थ्य आगयी है जो साधारण अवस्था में दुर्लभ थे—किन्तु जब हम उस बलवान संकल्प वाले पुरुष की संगति से अलग हो जाते हैं और अकेले होते हैं तो यह सूक्ष्म भाव संकीर्ण और भ्रमयुक्त हो जाते हैं।

श्रोतागण व्याख्यान सुनते हैं और भली भांति समझ जाते हैं और सार उपदेश को तत्काल ग्रहण भी कर लेते हैं। प्रसन्न मुख व्याख्यान से वापिस लौटते हैं और हृदय में समझते हैं कि आज हमें व्याख्यान का उत्कृष्टतम लाभ हुआ अगले दिन जब किसी मित्र से उस ज्ञान की चर्चा करते हैं तब उन्हें दुःख होता है कि उन भावों के उन्होंने व्याख्यान से सुना था। प्रायः तुरंत ही उनके मुंह से निकलता है कि "निःसंदेह मैंने आशय समझा है मेरे मानसिक जगत में वह विचरण कर रहा है परंतु पकड़ में नहीं आता।

यह भाव उन कंपो की स्मृति से उत्पन्न होता है जिनका अनुभव मानसिक देह और जीवात्मा को हो चुका है। पहले दिन व्याख्यान में उपदेष्टा के बलवान कम्पों ने उन रूपों की यह रचना की थी जिन्हें श्रोता के मानसिक देह ने ग्रहण किया। रूपों की रचना श्रोता के अन्तर में नहीं बल्कि बाह्य में हुई थी। परंतु इन रूपों को अपने शब्दों में दुहराने की जो समर्थता प्रगट होती है उससे ज्ञात होता है कि श्रोताओं के लिए उपदेश की यह रचना कई बार दुहराना चाहिए जिससे श्रोता के मनमें इन विचारों के कम्पन का प्रभाव कई बार पड़े जिससे वह पश्चात दुहरा सके। अपनी स्वाभाविक प्रकृति के कारण वह अपने अन्दर उन कम्पों को दुहराने की शक्ति उन्नत कर सकता है—यदि बाह्यस्पर्शों से वह कई बार कम्पायमान हो चुका है। दोनों ज्ञाताओं में शक्ति एक ही हैं—परन्तु एक ने उसे उन्नत कर लिया है और दूसरे में वह सोई हुई शिथिल पड़ी है। किसी सजातीय शक्ति के साथ संसर्ग होने से यह शिथिलता दूर हो सकती है और इस प्रकार बलवान विचार वाला पुरुष निर्बल विचार वाले पुरुष की उन्नति को तेज कर सकता है।

अपने से अधिक उत्तम पुरुषों की संगति से जो लाभ होते हैं उनमें एक यह भी है—कि उनके संसर्ग से हमारा कल्याण होता है और उनके उत्साही प्रभाव से हमारी वृद्धि होती है। व्यक्तिगत संसर्ग से तो कई गुना लाभ होता है यदि ऐसा संभव न हो तो पुस्तकों के द्वारा भी बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। किसी वास्तविक महापुरुष का ग्रंथ पढ़ते समय हमें पूर्ण रीति से शिष्य भावना रखना उचित है जिससे हम उसके संकल्प के कंपों को यथासंभव ग्रहण कर सकें।

आत्मबल या पारस।

(श्री राजर्षि महिपालसिंहजी, निमदीपुर स्टेट)

गिरनार की गुफाओं में घूमते हुये एक बार मुझे एक महात्मा मिले-मेरे सामने उनसे एक दूसरे आदमी ने पूछा कि बाबा पहाड़ों में पारस पत्थर खोज रहे हो? वह सफेद दाढ़ी वाले ओज पूर्ण मुखको ऊंचा करके तेज से तप्त नेत्रों को एकत्र भावना से खोलकर बोले कि मैं तुम से बोलना नहीं चाहता-मेरी तरफ़ संकेत करके कहा कि यदि आप चाहें तो मैं कुछ कहूं इस व्यंग बाणी की कहानी समझा सकता हूं स्वच्छ स्वतंत्र सुबिचार के आधार पर आत्मिक शक्ति साधन द्वारा अनेक प्रकार के धन प्राप्त होते हैं अनन्त शक्ति शाली का कोष कभी खाली नहीं हो सकता-अभाव भासित करने वालों को चाहिए कि वह अपनी आत्मिक प्रभाव वाली कमी को पूरा करें,क्यों कि उसीके साथ क्रमानुसार इसमें घटती बढ़ती होती है इसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं जो चाहें इम्तहान लेकर देखले। बिचारकों के लिये स्वयं अपनी आत्मिक और आर्थिक आदि शक्तियों का संतुलन एक प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकता है केवल द्रव्य से ही इसकी भव्यता नहीं होती कर्तव्य शीलता को सम्मिलित करते हुये सम्मानित संतोष का कोष पूरा होता है। क्यों कि जघन्य कर्म्मों द्वारा उपार्जित धन उसे सन्मानित नहीं बना सकता।

सब धातुओं से पत्थर में धारणा शक्ति विशेष होती है इसीसे उसका मूल्य सबसे बड़ा चढ़ा होता है जबगुप्त शक्ति का सामूहिक प्रकाश उस पर पड़ता है तो वह उसके प्रभाव को अधिक अंश में धारण कर लेता है और स्पर्श के साथ अपने आदर्श गुणों को दूसरी धातुओं में भी वितरण कर सकता है। हर एक के हृदय में पारस से कहीं अधिक प्रभाव वाली विद्युत शक्ति रहतीहै जिसको [illegible]

अपार कोष भंडार के एक कोने की कमी को भी नहीं पूरा कर सकता-एवं अपने सम्पर्क में आने वालों को भी वह गुणवान बना देता है परन्तु कठिनाई यह है कि प्रथम तो वह इन निःस्सार वस्तुओं पर ममता नहीं रखता दूसरे अज्ञानियों की व्यंग बाणी उसके हृदय में इतनी घृणा उत्पन्न करा देती है कि किसी तरह वह ऐसे नारकी सम्पर्क को स्वीकार नहीं कर पाता। जब से मैंने उनके आदेशिक उपदेश को सुना आत्मिक शक्ति के साथ सांसारिक साधनों का संतुलन करता रहा मुझे तिलभर भी कभी अन्तर नहीं मिला।

हर एक की आत्मिक शक्ति के साथ उसके स्वाभाविक साधनों का अथवा उपार्जित साधनों के साथ उसकी आत्मिक शक्ति का सही पता मालूम हो सकता है जिनको इस संतुलन का अभ्यास हो जाता है कुबासना उनके आस पास नहीं पहुंच पाती-द्रव्य की दासता को वह दूर ही रखना चाहता है-उसका प्रयास दिव्य प्रकाश में अखंड आनन्द के अभ्यास में लगा होता है-जिनकी हृदय कली संसार की खलबली में भी खिली रहती है उनकी अगम्य ज्ञान वाली मंद मुसकान ही उनके महानता की पहिचान होती है। बिचारवान पाठक इस पर ध्यान देकर देखने का अभ्यास करें। अधिक समय न लगा पाने वाले अपनी डायरी को ही पथ प्रदर्शक मानलें सुबिचारों और कुबिचारों दोनों की एक सूची बनालें नित्य प्रातःकाल उठकर २४ घंटे में होने वाली आत्मिक आधार की घटनाओं को यथा तथ्य रूप में निःसंकोच नोट करके आत्मिक शक्ति अधिकारी से मिलने वाले सुविचारों के लिये आभारी हों तथा दूसरों के संसर्ग से होने वाले कुबिचारों के लिए आत्मग्लानि के साथ क्षमा प्रार्थी होकर भविष्य में सतर्क रहने का दृढ़ निश्चय बनावें। थोड़े समय में उनको भासित होने लगेगा कि उनका किया जाने वाला आत्मिक शक्ति साधन का अभ्यास [illegible] आंतरिक शक्ति को आगे बढ़ा रहा है।

शक्ति का ह्रास क्यों होता है ?

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

यदि जीवन यापन ठीक तरह किया जाय तथा जीवन-तत्वों को ह्रास से बचाया जाय, तो मनुष्य दीर्घकाल तक जीवन का सुख लूट सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को उन खतरों से सावधान रहना चाहिए, जिनसे जीवन शक्ति का ह्रास होता है, सर्व प्रथम मनुष्य की शक्ति का ह्रास करने वाली बात अधिक भोग विलास है। संसार के समस्त पशु पक्षियों की प्रजनन शक्ति अत्यन्त परिमित है। वे केवल आनन्द, क्षणिक वासना के वशीभूत होकर रमण नहीं करते, विशेष ऋतुओं में ही प्रजनन कार्य होता है। प्रकृति उन्हें विवश करती है, तब उनका गर्भाधान होता है। आज के मानव समाज ने नारी को केवल वासना तृप्ति का साधन मात्र समझ लिया है। पति पत्नि के संयोग की मात्रा अनियमित हो रही है। हम संतानोत्पत्ति का उद्देश्य, आदर्श तथा प्रकृति का आदेश नहीं मान रहे हैं। फलतः समाज में आयुष्यहीन, अकर्मण्य, निकम्मे बच्चे बढ़ रहे हैं। इन्द्रियों की चपलता, कामुकता बढ़ रही है। अधिक भोगविलास से मनुष्य निर्बल होते जारहे हैं। कामुक और कामुकता में लगे रहने वाले जीव या व्यक्तियों के बच्चे कभी बलवान, आचारवान, संयमी, धीमान, विचारवान् नहीं हो सकते। प्रत्येक वीर्य का बिन्दु शक्ति का बिन्दु है। एक बिन्दु का भी ह्रास शक्ति को नष्ट करना है यदि शक्ति, जीवन, तथा आरोग्य की रक्षा करना चाहते हैं तो भोगविलास से दूर रहिए :

शक्ति का ह्रास अधिक दौड़ धूप से होता है। आधुनिक मनुष्य जल्दी में है। उसे हजारों काम हैं। प्रातः से सायंकाल तक वह व्यस्त रहता है। उसका काम ही जैसे समाप्त होने में नहीं आता। बड़े नगरों में तो दौड़ धूप इतनी बढ़ गई है कि दम मारने का अवकाश नहीं मिलता। क्लबों, होटलों में गपशप करता है। आफिस में कार्य करता है, घर के लिए सामन लाता है, बालबच्चों को मदरसे भेजता है, अस्पताल से दवाई लाता है। यदि आप व्यापारी हैं तो व्यापार के चक्कर में प्रातः से सायंकाल तक दौड़धूप करनी है। आज के सभ्य व्यक्ति को शान्ति से बैठ कर मन को एकाग्र करने तक का अवसर नहीं मिलता। संसार के कोने कोने से अशान्ति और उद्विग्नता की चिल्लाहट सुनाई दे रही है। चित्त की चंचलता इतनी बढ़ती जारही है कि हम क्षुब्ध एवं संवेगशील बन रहे हैं। इस दौड़धूप में एक क्षण भी शान्ति नहीं ? यदि हम इसी उद्विग्न एवं उत्तेजित अवस्था में चलते रहे, तो जीवन में कैसे आनन्द, प्रतिष्ठा, एवं शान्ति पा सकते हैं। हमारे चारों ओर का वायुमंडल जब विक्षुब्ध है, तो आत्मा की उच्चतम शक्ति क्योंकर सम्पादन कर सकते हैं। जो व्यक्ति शक्ति संचय करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि अधिक दौड़धूप से बचें, केवल अर्थ उत्पादन को ही जीवन का लक्ष्य न समझें, शान्तिदायक विचारों में रमण करें। जिस साधक के हृदय में शान्ति देवी का निवास है, जिसके हृदय में ब्रह्मनिष्ठा एवं संतोष है, उसकी मुखाकृति दिव्य आलोक से चमकती है। जो ब्रह्मविचार में लगता है, वह अपने आपको निर्बलता, प्रलोभन, पाप, से बचाता है।

शक्ति के ह्रास का तीसरा कारण है अधिक बोलना। जिस प्रकार अधिक चलने से जीवन क्षय होता है, उसी प्रकार अधिक बोलने, बातें बनाने अधिक भाषण देने, बड़बड़ाने, गालीगलोज देने, चिढ़कर कांव कांव करने से लोग फेफड़ों को कमजोर बना डेते हैं। पुनः पुनः तेज आवाज निकालने से फेफड़ों का निर्बल हो जाना स्वभाविक है। यही नहीं, गले में खराश तथा खुश्की से खांसी उत्पन्न होजी है। खांसी बनी रहने से क्षय रोग होकर मनुष्य मृत्यु को ग्रास होता है। प्रायः देखा गया है कि व्याख्याता, अध्यापक,

लेकचरार, पतले दुबले रहते हैं। यह शक्ति के क्षय का प्रत्यक्ष लक्षण है। अधिक बोलने से शारीरिक शक्ति का ह्रास अवश्यभावी है। यह अपनी शक्ति का अपव्यय है। अधिक बोलने की आदत से मनुष्य बकवासी बनता है, लोग उसका विश्वास नहीं करते, ढपोरशंख कहते हैं। वह प्रायः दूसरों की भली बुरी खोटी आलोचना करता है, अनावश्यक बातें बनाता है, निंदा करता है अपनी गंभीरता खो बैठता है, प्रायः ऐसा करने वालों का आदर कम हो जाता है। शक्ति को अपव्यय से बचाने की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि मितभाषी बनें मिष्टभाषी बनें। कम बोलें किन्तु जो कुछ बोलें,वह मनोहारी और दूसरे तथा अपने हृदय को प्रसन्न करने वाला हो, सारयुक्त हो, शब्द योजना सुन्दर हो, प्रेम तथा आनन्द का, आदर और स्नेह का परिचायक हो। शक्ति संचय के लिए मितभाषी बनिये। आध्यात्म चिन्तन, पठन पाठन, अध्ययन मौन, लिखना, मितभाषी बनने के सुन्दर उपाय हैं।

किसी अपाहिज, अनाथ और दुखी मनुष्य की हंसी मत उड़ाओ। क्या पता तुम्हारा भाग्य तुम्हारी हंसी कब उड़ादे।

\+ + +

यदि तुम किसी की भलाई अथवा सेवा नहीं कर सकते तो कम से कम किसी के साथ बुराई तो मत करो।

\+ + +

जो अपने सुख दुख के समान ही दूसरों का सुख दुख समझताहै उससे बुरा काम बनना बहुत मुश्किल है।

\+ + +

किसी के दोषों को प्रगट करना सरल है पर किसी के गुणों का बखान करना बहुत ही कठिन है।

यह फैशन परस्ती छोड़िए।

बनावटी, अस्वाभाविक, रूप से, दूसरों को भ्रम में डालने या आकर्षण में फंसाने के लिए जो मायाचार किया जाता है वह दंभ कहलाता है। दंभ की शास्त्र कारी ने पाप में गणना की है। क्योंकि उसके मूल में अनीति का, अहंकार का, असत्य का, ठगी का, दुर्भाव काम करता है। दंभी मनुष्य ऐसे प्रपंच रचता है जिससे वह दूसरों की दृष्टि में जैसा कि वह वास्तव में है उससे अधिक ऊंचा जंचे। इस प्रकार के आडंबर से वह दूसरों में ऊपर अपना आतंक जमा कर सम्मोहित करता है और अपने अहंकार को तृप्त करता है।

इस दंभ को, भड़कीली फैशन के रूप में हम अपने चारों ओर फैला हुआ देखते हैं। जिन कपड़ों की स्वास्थ की दृष्टि से तनिक भी आवश्यकता नहीं है उन्हें फैशन के नाम पर बेतरह लादे हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। गर्मी की ऋतु में बनियान, कमीज, वासकट, कोट चार चार कपड़े लादे हुए देखकर, देखने वालों का जी अकुलाने लगता है। शरीर से निकलने वाली उष्णता को शान्त करने के लिये पसीना सुखाने के लिए हवा की आवश्यकता महसूस होती है परन्तु बाबू जी गले को नैकटाई से और कस देते हैं जिससे देह तक हवा न पहुंच सके। पतलून के कारण घुटने मोड़ने में कठिनता पड़ती है, कमर में कसी हुई बेल्ट के कारण पाचन क्रिया में बाधा पड़ती है, परन्तु फैशन के नाम पर उसे धारण किया जाता है। योरोप के ठंडे मुल्कों में जो पोशाक भयंकर सर्दी से प्राण बचाने के लिए पहनी जाती है वह भारत जैसे गरम देश के लिए बिलकुल निरर्थक ही नहीं उलटी हानिकर भी है, इस बात को बाबूजी भले प्रकार जानते हैं। जाड़े के दो तीन महीनों को छोड़कर शेष नौदस महीने बराबर उससे असुविधा अनुभव

एक ही है। इंग्रेजी पोशाक पहन कर आंशिक रूप से उन्हें अपने में अंग्रेज होने जैसा अहंकार आता है। उस अहंकार को इस दंभ पूर्ण फैशन से वे तृप्त करते हैं।

केवल इंग्रेजी फैशन की ही बात नहीं, देशी फैशन भी उसके जोड़ के मौजूद हैं। बढ़िया, कीमती से कीमती, अधिक से अधिक वस्त्र लादने की लोग यथा संभव कोशिस करते हैं। जिन कपड़ों को लोग घर पर साधारण स्थिति में नहीं पहन सकते उन कीमती कपड़ों को पहन कर हाट बजार में, नाते रिस्ते में, गोष्ठी पार्टी में जाते हैं। देखने वाले भी जानते हैं कि इतने कीमती कपड़े नित्य पहनने की इनकी हैसियत नहीं है, यह पोशाक जाने आने के लिए सुरक्षित रखी रहने वाली है। एक दूसरे की पोल को जानते हैं, फिर भी एक दूसरे को चकमा देने की कोशिस करते हैं। अनावश्यक पैसा खर्च होता है, शरीर को कठिनाई पड़ती है, उन वस्त्रों की साज संभाल विशेष रूप से रखनी पड़ती है, इतना सब होते हुए भी यह भेद छिपा नहीं रहता कि बाबू जी इतने अमीर नहीं है कि ऐसी कीमती पोशाक नित्य पहनें यह तो दिखाने वाले हाथी के दांत हैं। अब विचार कीजिए कि ऐसी स्थिति में उस तड़क भड़क भरी खर्चीली पोशाक का क्या महत्व रहा? उसे धारण करने से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? दूसरों को मूर्ख बनाने के प्रयत्न में यह फैशन परस्त लोग स्वयं मूर्ख बनते हैं।

केवल वस्त्रों तक ही पर फैशन सीमित नहीं रहती। वेश विन्यास इस युग की एक कला का रूप धारण करता जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं सजावट की दृष्टि से आकर्षण की दृष्टि से, अपने को अधिक रूपवान सिद्धि करने की दृष्टि से यह सब होता है। जूता, टोपी, छड़ी, इत्र, फुलेल, क्रीम, पाउडर सब पर फैशन की छाप रहती है, रंगीला पन, हर चीज़ से टपकता है। [illegible]

बढ़ती जाती हैं। उनका खर्च दिन दिन अधिक होता जाता है।

वे लड़कियां और स्त्रियां जिन तक पश्चिमी सभ्यता का असर पहुंच गया है। पुरुषों से इस मामले में चार कदम आगे हैं। वे काली मेम साहब बनने का भर सक प्रयत्न करने में अपने बस की कोई कोर कसर नहीं छोड़ती। देशी फैशन में भी तितली और परी बनने की, आभूषणों से लदने की, होड़ सी लगी हुई है। चहरे को पाउडर से पोतना, होट और नाखूनों को रंगना, स्त्रियों का एक प्रिय शृंगार बन गया है। भड़कीली कीमती पोशाक पहने बिना स्त्रियां घर से बाहर पांव नहीं रखतीं। इस कीमती भड़कीली फैशन में सजकर जब वे घर से बाहर जाती हैं तो उनके मनमें अपने फैशन का अहंकार रहता है, ऐसे सजे बजे प्राणी की स्वाभाविक इच्छा यह होती है कि दूसरे उसके सजाव शृंगार को देखें। यह प्रदर्शन भावना का तामसिक बीज अनिष्ट कर दुर्घटनायें उत्पन्न करता है। उससे ऐसी समस्यायें उठ खड़ी होती हैं जो सतीत्व के मार्ग में बड़ी बाधक सिद्ध होती हैं।

एक बार एक नौजवान को लाहोर की सड़क पर एक भले घर की लड़की से भद्दा मजाक करते हमने देखा। हम लोग कई आदमी थे, उसे रोक लिया गया। झगड़ा देखकर काफी भीड़ जमा होगई। उस नौजवान का कहना था कि 'मैंने उस स्त्री को वेश्या समझा था।' बात चाहे उसकी बनावटी ही क्यों न हो किन्तु इसमें शक नहीं कि वह लड़की असाधारण रूप से अपने को तितली बनाये हुई थी। रास्ता चलते आदमी उसकी ओर घूर घूर कर देखते थे। ऐसी फैशन परस्ती उस सजे बजे प्राणी के मनमें और देखने वाले के मनमें अनायास ही कुसंस्कार उत्पन्न करती है।

भड़कीली फैशन के दंभ के मूल में अमीरी का या रूपवान होने का अहंकार छिपा रहता है। यह अहंकार आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वथा हानिकारक है यदि इसका पोषण होता है तो यह

अधिक मजबूत एवं परिपुष्ट बनजाता है। तब वह और अनेक बुराइयों की सृष्टि करता है। 'श्रम से घृणा' ऐसी ही एक बुराई है जो मिथ्या अहंकार के कारण उत्पन्न होती है। बाबूजीयों और बबुआइनों को हम इस बुराई में बुरी तरह फंसा हुआ देखते हैं। अपना सूट केस अपने हाथ में लेकर चलना बाबूजी की शान की खिलाफ है। बबुआइनें अपने छोटे बच्चे को गोदी में लेकर चलते हुए अपनी तौहीन अनुभव करती हैं। पढ़ी लिखी लड़कियां, कहारिन और रसोई दारिन की मुंहताजी करती हैं, चूल्हा चौका करना पड़े तो इसे अपना दुर्भाग्य समझती हैं। जहां कुछ समय पूर्व पति के भोजन के समय पंखा करना, धोती, धोना, पैरदाबना स्त्रियों का नित्य कर्म था वहां अब यह सब बातें 'श्रम से घृणा' के कारण छोड़ दी गई हैं। दाम्पति जीवन की मधुरता भी इसके साथ साथ ही छूटती जारही है।

भड़कीली फैशन से आध्यात्मिक दंभ बढ़ता है। श्रम से घृणा उत्पन्न होती है। साथ ही उससे अनेकों प्रकार के सामाजिक बुराइयां बढ़ती हैं। बड़े लोगों की देखादेखी छोटे लोग भी अपका 'बड़प्पन' प्रदर्शित करना चाहते हैं। वे भी फैशन बनाना चाहते हैं। किन्तु आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी होती नहीं, फैशन के लिए पैसा चाहिए, इस अन्तर्द्वन्द के कारण मनुष्य पतन के पथ पर चलता है। चोरी, उठाईगीरी, ठगी, अपहरण अन्याय किसी भी प्रकार से पैसा प्राप्त करने की कोशिस करता है। एक व्यक्ति के पाप जीवी हो जाने से अत्यन्त रूप से अनेकों व्यक्तियों पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। कितने ही पीड़ित होते हैं, उस पीड़ा की प्रतिक्रिया से कितने ही अन्य प्रकार की बुराइयों पर उतारू होते हैं, कितने ही उन पाप जीवियों के प्रभाव से उसी मार्ग के अनुगामी बन जाते हैं इस प्रकार फैशन का भूत एक तक ही सीमित नहीं रहता है, एक से अनेकों पर अपना शैतानी प्रभाव डालता है और समाज में अशान्ति की श्रृंखला उत्पन्न कर देता है। अति की फैशन बनाने वाले व्यक्ति आमतौर से अविश्वस्त, नैतिक धरातल से गिरे हुए, समझे जाते हैं। गरीब श्रेणी का व्यक्ति यदि बहुत चटक मटक बनाता हो तो उसे उठाईगीरा कहा जा सकता है। अमीर यदि अधिक टीमटाम बनाता हो तो उसे दंभ में मदहोश कह सकते हैं।

यूरोप के देशों में इस फैशन परस्ती ने स्त्रियों के सतीत्व पर घातक प्रहार किया है। चटक मटक का उद्देश्य दूसरों को आकर्षित करना है। यह आकर्षण केवल विनोद तक सीमित नहीं रहता वह अवांछनीय मेलजोल उत्पन्न करता है। रूप का गर्व, दूसरों को अपना दास बनाकर ही तृप्ति अनुभव करता है। बढ़ती हुई स्त्री स्वतंत्रता, फैशन से उत्पन्न हुए रूप गर्व के संमिश्रण के कारण सतीत्व धर्म से दूर भगाती जारही है। योरोप के होटलों में व्यभिचार की रोमाञ्चकारी क्रीड़ाऐं नग्न नृत्य किया करती हैं। छोटे छोटे प्रलोभनों के लिए सतीत्व का विनिमय होता रहता है। यह हवा हमारे देश में अपने ढंग से आरही है। फैशन के वस्त्र आभूषणों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए गुपचुप व्यभिचार जिस भयंकर रूप से हमारे समाज में चल रहा है, उसे देखकर यह कहा आसकता है कि हम भी योरोप से बहुत पीछे नहीं हैं। हमारी बेटियां और बहनें फैशन की ओर जिस सत्यानाशी वेग से दौड़ रही हैं उसके घातक परिणामों की कल्पना करके कलेजा धड़कने लगता है।

चिनगारी आरंभ में एक छोटी चीज है, पर अन्त में वह एक सर्वग्रासी घातक वस्तु बन जाती है। एक छोटा सा कुविचार यदि मन में पलता रहता है तो अन्त में वह जीवन को नारकीय पापों के गर्त में डुबा सकता है। फैशन परस्ती-स्थूल दृष्टि से देखने में एक बहुत छोटी बुराई मालूम पड़ती है। चाय सिगरेट जैसे नशीले पदार्थों की भांति अभ्यास में आजाने पर फैशन परस्ती में उसके उपासकों को कोई बुराई तक दृष्टि गोचर नहीं होती। कई माता पिता लाड़चाव

में अपने बालकों के ऊपर पर्त के पर्त कपड़े चढ़ाये रहते हैं, चांदी सोने के ऐसे खुरदरे जेवर पहनाये रहते हैं जो उनके शरीर में चुभते और कष्ट पहुंचाते हैं। जेवर और कपड़ों के पर्त लाद देने से बालक "बड़े आदमी का बालक" लगता है या नहीं यह तो देखने वालों की आँखें जानें, पर इतना हम जानते हैं कि इसका बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। शरीर से निकलने वाली गंदी हवा बाहर नहीं निकलती, बाहर की शुद्ध हवा त्वचा तक नहीं पहुंचती, जेवर चुभने से नींद टूटती है और कष्ट से वह बार बार रोपड़ता है ऐसी दशा में बालकों का आये दिन बीमार रहना स्वाभाविक ही है। जो अभिभावक छोटे पन से अपने बालकों को श्रम शील न बना कर उन्हें फैशन परस्ती सिखाते हैं वे अनजान में उनके साथ शत्रुता का बर्ताव करते हैं।

फैशन परस्ती का विरोध करने का हमारा तात्पर्य भड़कीली, अस्वाभाविक, रंगविरंगी, खर्चीला, विचित्र काट छांट की पोशाक से है। शरीर की लीपा पोती तो बड़ी ही उपहासास्पद है। होंट, नाखून मसूड़े, चहरा आदि अंगों को पोतने के लिए तरह तरह के डिब्बे और शीशियां बाजारों में लाखों रुपये के बिकते हैं। इन्हें शरीर पर लीप पोत कर मनुष्य सुन्दर तो क्या बनेंगे असल में कुरूप बन जाते हैं। रंगों से पोतना अपनी रूप-हीनता का भद्दा विज्ञापन है। सभ्य समाज में ऐसे नर नारी उपहासास्पद, हलके बौद्धिक धरातल के समझे जाते हैं।

सादगी अपने आप में एक पूर्ण फैशन है। स्वच्छता पूर्ण सादगी में एक सात्विक सजावट है जो शान्ति पूर्ण सद्भावों का अविर्भाव करती है। स्वदेशी, खादी के स्वच्छ धुले हुए आवश्यक कपड़े शरीर को भली भांति सुसज्जित कर देते हैं। धोती, कुर्ता पहने हुए सादगी पसंद व्यक्ति कैसा सुन्दर एवं भला मालूम पड़ता है! सादा वस्त्रों के साथ साथ अन्तःकरण में एक नम्रता, गंभीरता, एवं विवेक शीलता की तरंग उत्पन्न होती है। फैशन का भूत, साहब, बहादुर, जेन्टिलमैन, सेठ या अमीरी का बाना पहन कर मनुष्य का हृदय अहंकार, चंचलता एवं दंभ से लद जाता है किन्तु निर्मल स्वदेशी खद्दर के वस्त्र पहन ने पर बिलकुल दूसरी ही बात होजाती है जैसे रंगमंच पर खेल करने वाला पात्र जब जनानी पोशाक पहन लेता है तब स्त्रियों के से हावभाव और शब्द प्रयोग करता है किन्तु वही नर जब मर्दानी पोशाक पहन कर स्टेज पर आता है तो उसके हावभाव एवं शब्द दूसरे प्रकार के हो जाते हैं। फैशन के साथ एक संस्कृति का संबंध होता है, योरोपियन, पोशाक पहनने वाले में साहबी बू घुस पड़ती है, इसी प्रकार सादा, शुद्ध, भारतीय संस्कृति से संबंधित पोशाक पहनने वाले में सात्विकता का, धार्मिकता का समावेश अनिवार्य रूप से होता है।

हमारी बहनें, बेटियां, मातायें यदि रंग विरंगे, खर्चीले, आकर्षक, वस्त्राभूषण न पहन कर श्वेत, शुद्ध, स्वच्छ, स्वदेशी, आवश्यक मात्रा में धारण करें तो एक दैवी सजावट से सुसज्जित प्रतीत होंगी। उनके भावों, विचारों, शब्दों एवं आकांक्षाओं में जमीन आसमान का अन्तर होजायगा। सात्विक भावों की वृद्धि होने से वे गृहस्थ जीवन के वातावरण में स्वर्गीय आनन्द का आविर्भाव कर सकती हैं। आदर्श पत्नी, आदर्श माता, और आदर्श पुत्री बनने की इच्छा रखने वाली देवियों का प्राथमिक कर्तव्य यह है कि वे वर्तमान भड़कीली फैशन से सच्चे हृदय से घृणा करें, उसे आसुरी चक्र समझ कर दूर से ही नमस्कार करें। सौभाग्य सूचक, आवश्यक आभूषणों को पर्याप्त समझें, जेवरों से लदने की तृष्णा से अपना पिण्ड छुड़ावें। सादा शुद्ध स्वदेशी, वस्त्रों को धारण करें।

आप सादगी पसंद कीजिए अपने विचारों की भांति वेष भूषा को भी सात्विक रखिए। फैशन परस्ती छोड़िए क्योंकि यह सब दृष्टियों से आपके लिए अनावश्यक एवं हानिकर है। ——

स्वर्ण का लोभ।

एक राजा बड़ा लालची था। वह चाहता था कि मैं सबसे बड़ा धनवान बन जाऊं, जो सम्पदा किसी के पास नहीं है वह मुझे मिल जावें। मेरी सम्पत्ति का वारापार न रहे।

एक दिन किसी बड़े सिद्ध पुरुष से उसकी भेंट हुई। राजाने अपनी अभिलाषा उन महात्मा से कह सुनाई और कहा कृपा कर किसी प्रकार मेरी इच्छा पूर्ण करा दीजिए।

योगी ने उसे समझाया कि यह इच्छा ठीक नहीं। संपत्ति की एक सीमा तक ही उपयोगिता है, उसकी अति से सुख नहीं दुख मिलता है। पर राजा की समझ में न आई, वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ही अनुरोध और आग्रह करता रहा।

राजा ने योगी से याचना की कि उसे ऐसी सिद्धि प्राप्त होजाय कि—"जिस वस्तु को छुवे वही सोने की होजाय।,, राजा की अति हठ को देख कर योगी ने उसे वैसा ही वरदान दे दिया। राजा को प्रसन्नता की सीमा न रही।

वह जिस वस्तु से हाथ लगा देता वही सोने की होजाती। थोड़ी ही देर में उसके महल तिवारे रथ, पात्र, पलंग सभी सोने के होगये। चारों ओर स्वर्ण ही स्वर्ण था, राजा स्वर्ण के समुद्र में उतराता हुआ आनन्द विभोर होरहा था।

पर यह क्या? यह आनन्द तो थोड़ी देर भी स्थिर न रह सका। राजा का छोटा सा बच्चा दौड़ता चला आया और पिता की गोद में चढ़ गया, राजा ने उसे गोदी में उठाया ही था कि वह सोने का निर्जीव खिलौना मात्र रह गया। पुत्र चला गया, सोने की मूर्ति हाथ में रह गई। पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर रानी पागल की भांति दौड़ी आई। राजा की गोदी से मृत पुत्र की लाश को उठाने ही जारही थी कि वह

कि रानी भी सोने की पुतली होगई। वह बहुमूल्य धातु की जरूर थी पर उसमें से प्राण विदा होगया।

राजा किंकर्तव्य विमूढ़ होरहे थे। स्त्री और पुत्र की मृत्यु से उनका शरीर जलने लगा। तृषा शान्त करने के लिए पानी का गिलास उठाया तो वह भी सोने का होगया। भोजन के लिए ग्रास तोड़ा तो वह भी सोने का। पसीना सुखाने को पंखा उठाया तो वह भी स्वर्ण का भारी एवं कठोर सा औजार मात्र रह गया। हवा करने के काम का वह बिलकुल न था। कपड़ों से हाथ लगा तो वे कवच की तरह शरीर पर मढ़ गये। बिना काटे वे वस्त्र उतरने वाले न थे। मल मूत्र त्यागना कठिन होगया। लेटने और आराम करने की भी स्थिति न रही। सोने के मोटे मोटे भारी कपड़े उसे जहां का तहां जकड़े बैठे थे।

यह स्थिति राजा के लिए नरक की जलती हुई ज्वाला के समान दारुण दुख देने लगी। उसका एक एक पल कल्प कल्प के समान बीतने लगा।

योगिराज अपनी दिव्य दृष्टि से यह सब देख रहे थे। वे हंसते हुए राजा के संमुख फिर उप-स्थित हुए। उन्हें देखते ही राजा फूट फूट कर बालकों की तरह रोने लगा। चरणों पर गिरना चाहता था पर यह हो नहीं सकता था। सोने के कपड़े उसे जहां का तहां जकड़े बैठे थे। असहाय राजा के एक एक आंसू में से दारुण व्यथा का एक एक समुद्र फूटा पड़ रहा था।

योगी ने हंसते हुए कहा—राजन् अब क्या और चाहिए। क्या अभी कोई और सिद्धि की आवश्यकता है?

राजा की आत्मा क्रन्दन करने लगी—प्रभो, इस समय व्यंग न कीजिए। अब तो प्राणों पर बीत रही है, किसी प्रकार इस सिद्धि से बचा दीजिए। योगी दया से द्रवित होगये उनने अपनी माया समेट ली। सिद्धि का प्रभाव

एकादश व्रत।

(महात्मा गान्धी)

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ? जो हमें ब्रह्म की तरफ ले जाय वह ब्रह्मचर्य है। इसमें जननेन्द्रिय का संयम आ जाता है। वह संयम मन वाणी, और कर्म से होना चाहिये। अगर कोई मन से भोग करे और वाणी व स्थूल कर्म पर काबू रखे तो यह ब्रह्मचर्य में नहीं चलेगा। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' मन पर पूरा काबू हो जाय, तो वाणी और कर्म का संयम बहुत आसान हो जाता है। मेरी कल्पना का ब्रह्मचारी, कुदरतन तन्दुरुस्त होगा, उसका सिर तक नहीं दुखेगा, वह कुदरती तौर पर लम्बी उमरवाला होगा, उसकी बुद्धि तेज होगी, वह आलसी नहीं होगा, जिस्मानी या दिमागी काम करने में थकेगा नहीं और उसकी बाहरी सुघड़ता सिर्फ दिखावा न होकर भीतर का प्रतिबिम्ब होगी। ऐसे ब्रह्मचारी में स्थितप्रज्ञ के सब लक्षण देखने में आवेंगे।

ऐसा ब्रह्मचारी हमें कहीं दिखाई न पड़े, तो उसमें घबराने की कोई बात नहीं।

जो स्थिरवीर्य है, जो ऊर्ध्वरेता हैं, उनमें ऊपर के लक्षण देखने में आवें तो कौन बड़ी बात है ? मनुष्य के जिस वीर्य में अपने जैसा जीव पैदा करने की ताकत है, जिस वीर्य के एक बूंद में इतनी ताकत है, उस वीर्य को ऊंचे ले जाना ऐसी वैसी बात नहीं हो सकती। जिस वीर्य के एक बूंद में इतनी ताकत है, उसके हजारों बूंदों की ताकत का माप कौन लगा सकता है ?

यहां एक जरूरी बात पर विचार कर लेना चाहिये। पतंजली भगवान् के पांच महाव्रतों में से किसी एक को लेकर उसकी साधना नहीं की जा सकती। यह हो सकता है तो सिर्फ सत्य के बारे में ही, क्योंकि दूसरे चार तो सत्य में छिपे हुये हैं। और इस युग के लिये तो पांच की नहीं, ग्यारह व्रतों की जरूरत है। विनोवा ने उन्हें मराठी में सूत्ररूप में रख दिया है।

अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य असंग्रह,
शरीरश्रम अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन।
सर्वधर्मी समानत्व, स्वदेशी स्पर्शभावना,
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वें व्रतनिश्चयें॥

ये सब व्रत सत्य के पालन में से निकाले जा सकते हैं। मगर जीवन इतना सरल नहीं। एक सिद्धान्तों में से अनेक उपसिद्धान्त निकाले जा सकते हैं। तो भी एक सबसे बड़े सिद्धान्तको समझने के लिए अनेक उप-सिद्धान्त जानने पड़ते हैं।

यह भी समझना चाहिये कि सब व्रत समान हैं। एक टूटा कि सब टूटे। हमें आदत पड़ गई है कि सत्य और अहिंसा के व्रत भंग को हम माफ कर सकते हैं। इन व्रतों को तोड़ने वाले की तरफ हम उंगली नहीं उठाते। अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नहीं। मगर माना हुआ ब्रह्मचर्य का व्रत टूटा, तो तोड़ने वाले का बुरा हाल होता है। जिस समाज में ऐसा होता है। उसमें कोई बड़ा दोष होना चाहिये। ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ लेने से वह निस्तेज बनता है। उसका शुद्ध पालन नहीं होता, सच्ची कीमत नहीं आँकी जाती और दम्भ बढ़ता है। कम से कम इस व्रत का पूरा स्थूल पालन भी अशक्य नहीं, तो बहुत कठिन तो होता ही है। इसलिए सब व्रतों को एक कर लेना चाहिये।

राज परिवार ने संतोष की सांस ली मानो उन्हें उबलते हुए तेल के कढाव में से निकाल लिया गया हो।

योगी ने कहा—मैं पहले ही कहता था कि तुम्हारे लिए सिद्धियां सुखदायक नहीं दुखदायक होंगी। जब तक वासनाओं का पूर्ण क्षय नहीं होजाता तब तक सिद्धि का अधिकार प्राप्त नहीं होता। अनधिकारी व्यक्ति अपनी योग्यता से बहुत ऊंची पाकर उसे संभाल नहीं सकते, उसके बोझ से दब कर पिस जाते हैं। मैं अब जाता हूं तुम भविष्य में अनधिकार चेष्टा न करना।

मलेरिया से बचिए।

(श्री वाचस्पति शर्मा)

आजकल कोई बिरला ही घर होगा, जिस में कोई न कोई मलेरिया ज्वर का शिकार न होता हो। विशेष कर वर्षा ऋतु के मध्य से लेकर शरदकाल के पूर्वार्ध तक इस ज्वर का अधिक प्रकोप रहता है।

डाक्टरों के मतानुसार मलेरिया का कारण मलेरिया के मच्छरों का काटना है। मच्छरों के काट ने से शरीर के रक्त में एक प्रकार का विष फैल जाता है, और उसीसे ज्वर का प्रकोप हो जाता है।

परन्तु वैधक के मत से निम्न कारण हैं— रूखे हलके और शीतल पदार्थों का सेवन करना। अधिक परिश्रम करने, वमन, विरेचनादि पंच कर्मों के अतियोग, मल-मूत्रादि के वेग को रोक ने तथा उपवास या व्रत करने शस्त्रादि के चोट लगने, विधि हीन स्त्री प्रसंग, घबराने, शोक करने, अत्यन्त रक्त श्राव, रात में जागने, आदि कारणों से वायु कुपित होकर रोग उत्पन्न करती है।

जब मलेरिया का पूर्ण प्रकोप होजाता है तो उस समय निम्न लक्षण दिखाई देते हैं। सरदी लगना, कंपकपी होना, ज्वर कभी मन्द कभी तेज, कण्ठ, होठ, मुख का सूख जाना, निद्रा का तथा छींकों का न आना, शिर, हृदय और शरीर में दर्द होना, मुखका स्वाद बिगड़ जाना, पाखाने का न होना, यदि हो तो सूखा और थोड़ा सा होना। आदि २ लक्षण मलेरिया या बात ज्वर के हैं।

हमारा विश्वास है कि जब तक हमारा आहार विहार ऋतु अनुकूल है और उस में कहीं पर भी कोई भूल नहीं है तो कभी मलेरिया का क्या किसी भी रोग का प्रकोप हम पर नहीं हो सकता। क्यों कि 'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मला' सब रोगों का मूल भूत कारण है मलों का कुपित होना। और मलों का प्रकोप होता है, आहार विहार की गड़बड़ी से या ऋतु विपरीत खान पान से। अतः रोगों से मुक्ति पाने का सहज और सरल उपाय यही है कि अपने आहार विहार को ऋतु अनुकूल बनावें। जिससे मलों का प्रकोप न होने पावे।

वर्षा के ऋतु में रूखे, खट्टे और ठण्डे आहार से बचकर हलके और चिकने वात नाशक भोजन करना और भ्रमण करना तथा मच्छरों से बचे रहने के लिये सूखे स्थान में रहना चाहिये। साथ ही इस बात का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये—कि प्रातःकाल पेट भली प्रकार से साफ होता रहे, किसी प्रकार की विबन्धता (कब्जी) न होने पावे। क्यों कि यही एक सब रोगों की जड़ है। आजकल की मौसम में नीबू और हरी मिर्चों का विशेषतौर पर उपयोग करना चाहिये। दो चार तुलसी दल और दोचार काली मिर्च नित्य खाते रहने से मलेरिया से बचाव हो सकता है।

यदि बुखार का प्रकोप हो ही जाये तो निम्न प्रकार से उसका उपचार किया जा सकता है।

ज्वर आते ही औषधि विशेष का प्रयोग कर ने का यत्न मत करिये। अपितु स्वाभाविकतौर पर उनका पाचन होने दीजिये। क्यों कि ज्वर की प्रथम या नवीन अवस्था में औषध प्रयोग करने से मल अन्दर रुक जाने का भय है। मलों का भीतर शरीर में रोकना और भी रोग को निमंत्रण देना है। अतः कम से कम ३ दिन तो रोगी को औषध न देकर उपवास कराना ही हितकर है। इस बीच में कोई पाचक पेय पदार्थ आदि देना चाहें तो दे सकते हैं अन्यथा केवल दुग्ध पान पर ही रोगी को रखना चाहिये। फलों का रस भी दे सकते हैं।

(२) मलेरिया पर डाक्टर लोग कुनीन को ही सर्वोत्तम औषधि मानते हैं। उनका कथन है कि मलेरिया कीटाणुजन्य है और कुनीन कीड़ों का विष नष्ट करके प्रभाव कर देता है। परन्तु

आयुर्वेद के मत से कुनीन दोषों को निकालती नहीं है अपितु शरीर में रोक देती है और रुके हुए दोष दूसरे और २ रोगों को खड़े कर देते हैं इस लिये कुनीन जैसी औषधियों का प्रयोग न करके ऐसी औषधियों का प्रयोग करें जिससे मलों का दोष शान्त होजाय और पुनः किसी रोग के कारण वे कुपित दोष न बन सकें इस लिए आयुर्वेद की औषधियों का व्यवहार करना सर्वोत्तम है।

(३) अमलतास का गूदा, पीपला मूल, नागरमोथा, कुटकी और बड़ी हरड़ समान भाग लेकर जौ कुट लें। इसमें से २ तोले दवा ऽ।= पानी में पकावें जब ऽ= रह जावें तो ठंडा करके थोड़ी मिश्री मिला कर पीलें। इसके पीने से सब दोष पचते हैं तथा पेट साफ होकर ज्वर भी उत्तर जाता है।

(४) त्रिफला, हल्दी, दारु हल्दी, कटेरी, कटाई, कचूर, त्रिकुटा, पीपला मूल,मूर्वा,गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्त पापड़ा, नागर मोथा, त्रायमाण, सुगन्धवाला, नीम की छाल, पोह कर मूल, मुलैठी, कुड़े की छाल, अजवायन, इन्द्र जौ, भारंगी, सहजनाबीज, सोंठ, आवित्री, वच, दालचीनी, पद्माख, खश, चन्दन, अतीस, खरैटी शालपर्णी, (सरिवन) पृष्टिपर्णी (पिथिवन) वायविडंग, तगर, चीता, देवदारु, चव्य, पटोल पत्र, जीवक, ऋषभक लौंग,वंसलोचन,पुण्डेरिया, सुगन्धद्रव्य, काकोली, तेजपात, तालीसपत्र इन सबको समान भाग लेकर कूट पीस कर कपड़े में छान लो यही सुदर्शन चूर्ण है।

४ माशा चूर्ण गर्मजल से जवान को और बालक को १ मा० से १॥ माशे तक देने से सब प्रकार का ज्वर नष्ट होता है।

(५) नीम पत्ते १० भाग, हरड़ १ भाग आमला १ भाग, बहेड़ा एक भाग, सोंठ १ भाग, पीपल १ भाग, अजवायन ५ भाग, सैंधानौन और जवाखार एक भाग। सबको कूट छानकर रख लो और सुदर्शन की तरह व्यवहार में लाओ।

इसके खाने से भी समस्त प्रकार के कठिन से कठिन ज्वर भागते हैं। विशेष कर मलेरिया के लिये तो ये दोनों योग राम बाण सिद्ध हुए है।

वेद की अमर वाणी।

तद्दूरे तद्वन्तिके

यजुर्वेद ४०।५

वह परमात्मा अज्ञानियों के लिए दूर और ज्ञानियों के लिए समीप है।

अवहितं देवा उन्नयथा पुनः

ऋग् १०, १३७, १

जो गिरे हुओं को फिर उठाते हैं वे देव हैं।

शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर

अथर्व ३।२४।५

सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से दान करो।

पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा

ऋग्वेद ३।८।५

ज्ञानवान, विवेकद्वारा कर्मों को पवित्र बना लेते हैं।

भस्मान्त ं शरीरम्।

यजुर्वेद ४०।१५

यह शरीर एक दिन राख में मिल जाने वाला है।

तमसोमा ज्योतिर्गमय।

शत पथ १४।३।१।३०

हे प्रभो हमें अन्धकार से बचा कर प्रकाश की ओर ले चल।

राष्ट्रीय नेताओं से—

(श्री० हरदेव सहायजी)

गोरक्षा से हमारा जीवन तथा गोवध से हमारा मरण है। इस जीवन-मरण के प्रश्न को महत्व दें। आज का बढ़ा हुआ गोवध अंग्रेजी राज्य की देन है, अंग्रेजी राज्य खत्म हो रहा है पर, गोवध पर कोई रुकावट नहीं, आप कलतक अंग्रेजी राज्य की बड़ी बुराई गोवध बतलाया करते थे। सत्याग्रह तथा असहयोग के समय वृन्दावन के गो-सम्मेलन में हजारों लोगों की उपस्थिति में गोवध प्रश्न को लेकर ही कांग्रेसी नेताओं ने अंग्रेजी सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पास कराया था। कितने ही लोगों ने आपके साथ रहकर गोवध बन्द कराने के लिये अंग्रेजी राज्य का विरोध तथा त्याग भी किया। जिस तरह राज्य प्राप्त करने पर सुग्रीव राम के कामको भूल गया था, उसी तरह आप सत्ता प्राप्त करके जनता की भावना को भूल गये।

राष्ट्रीय नेताओं ने बड़े त्याग तथा बुद्धिमानी से देश को स्वतंत्र कराके महान कार्य किया है। देश के लोग तथा उनकी पीढ़ियां इन नेताओं की ऋणी रहेंगी, पर स्वतंत्रता देश के लोगों की भावना का आदर करने के लिये है। कुचलने के लिये नहीं। मौलिक अधिकारों तथा उनकी सभ्यता संस्कृति और जीवन के साधनों की रक्षा और भावनाओं का आदर करने के लिये ही है। यदि जनता की भावना की ही अवहेलना की जाय तो वह जनतंत्र नहीं। नहीं यह स्वाधीनता कहला सकती है। आप उन सब लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो स्वराज्य या जनता का राज्य स्थापित होने पर एक भी गाय का वध वर्दाश्त नहीं कर सकते, और चाहते हैं कि स्वतंत्रता की घोषणा में ही गोवध-निषेध का उल्लेख करके जनता को उसके अधिकारों की रक्षा का आश्वासन दिलावें। आपने जब स्वयं देश की बड़ी संख्या का विरोध करते हुए भी दो जातियों के सिद्धान्त को स्वीकार करके देश के टुकड़े २ करा दिये तब गोवध निषेध जैसे प्रश्नों के लिए भी आनी कानी क्यों? जनता ने इस विश्वास पर कि आप उसकी भावनाओं का आदर करेंगे। उसके हित को सर्वोपरि समझेंगे चुना था। आपको चाहिये कि इस विश्वास को अधिक दृढ़ करने के लिये उनके जीवन-मरण के प्रश्न को अपना प्रश्न बनायें।

यदि आपकी आत्मा की आवाज गोवध-निषेध को आज्ञा देती हो तो निर्भय होकर गोवधनिषेध की तजवीज रखें तथा अपना कर्तव्य समझते हुए इसके लिए पूरी-पूरी कोशिश करें। इस विषय पर न मौन रहें न आत्मा के विरुद्ध बोलें। मनु ने कहा है:—"सभा में जावे नहीं-जावे तो जो ठीक होवे वही बोले। मौन रहने या अनुचित बोलने से पापी होता है।" मि० मैक्डानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय जो राष्ट्रीयता तथा देश की एकता का विरोधी था। सब बुराईयों को जानते हुये भी आपने इसका विरोध न किया तथा मौन रहे। इस नीति के कारण देश में साम्प्रदायिकता का जहर फैला, जिस जहर ने लाखों घरों को उजाड़ दिया, हजारों पुरुषों-स्त्रियों को ही नहीं दुध-मुहे बच्चों तक की नृशंस हत्यायें कीं। पड़ोसी-पड़ोसी में वैरभाव ही नहीं फैला, दिल के टुकड़े २ होकर सदा के लिए अलग हो गए। यह सब आपके मौन रहने का परिणाम है। संसार में जब भी जिम्मेदार या अधिकारी लोग अन्याय के प्रति मौन रहे तब-तब जनसंहार हुआ। द्रोपदी के चीर-हरण के समय यदि भीष्म-पितामह व द्रोणाचार्य न्याय का पक्ष लेकर कौरवों का प्रतिकार करते तो भारत को चिरकाल के लिये कमजोर करने वाला महाभारत न होता।

आज भी यदि आप मौन रहे या इच्छा होते हुए भी दबाव में आकर विरुद्ध कार्य किया तो देश में जो बची-खुची समृद्धि और सद्भावना है वह भी न बचेगी। यदि आपकी आत्मा गोवध बुरा नहीं समझती—आप गोवध से देश का लाभ

समझते हैं तो अपने इन विचारों की स्पष्टतया उन लोगों को बतायें जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि वह लोग आपके विचारों का समर्थन करें तो वहीं रहें—विरोध करें तो मेम्बरी छोड़ दें। जनता की सम्मति का आदर करें। जनता ही जनतन्त्र की बुनियाद या अन्तिम निर्णय देने वाली है अदालत है कोई संस्था विशेष नहीं। भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों के मन्त्री विधान तथा प्रान्तीय असेम्बलियों, डि० बोर्डों, म्युनिसिपल-बोर्डों के सब मेंबरों को जो प्रत्यक्ष किसी भी तरह के चुनाव से मेंबर बनें वह सब गोवध-निषेध के बावत अपनी सम्मति प्रट करें।

विपत्ति का हेतु हमारी कमजोरियां हैं।

❀✶❀

आज से लगभग ८०० वर्ष पूर्व चंगेजखां ने भारतवर्ष पर हमला किया था। हमले के लिए वह एक बड़ी सेना अपने साथ लाया था। यहां आकर उसने हिन्दू जाति की आन्तरिक अवस्था [illegible] कुछ दिन बारीकी के साथ अध्ययन किया और जितनी सेना साथ लाया था उसमें से केवल एक तिहाई साथ रखकर दो तिहाई वापिस लौटादी। उसका कहना था जिस जाति की आन्तरिक दशा इतनी अव्यवस्थित है, उसे परास्त करने के लिए बहुत बड़ी शक्ति की कोई आवश्यकता नहीं। उसे तो मामूली बल प्रयोग से दबाया जासकता है।

चंगेजखां का अनुमान ठीक निकला। मुट्ठी भर मुसलमानों के काफिले, अफगानिस्तान से आते रहे और जरा जरा प्रयत्न से विशाल भूखंडों पर शासन जमाने और प्रचुर सम्पत्ति लूट लूट कर लेजाने में सफल होते रहे। सात सौ वर्ष तक वे मुट्ठी भर लोग राज्य करते रहे। इसके बाद थोड़े से योरोपियन छोटी छोटी डोंगियों में व्यापार करने आये। कुछ ही दिन तिजारत की थी कि यह तथ्य उनकी समझ में भी आगया कि हिन्दू जनता अपनी भीतरी निर्बलताओं में इतनी ग्रस्त है कि इसके ऊपर नाम मात्र के प्रयत्न से शासन जमाया जासकता है। उन्होंने अपनी नगण्य शक्ति से हाथ पैर फैलाने शुरू कर दिये। कुछ ही वर्षों में उन्होंने मुसलमानों को धकेल कर अपना कब्जा जमा लिया। मुसलमानों से शासन छीनने में इंग्रेजों को कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि वे लोग भी किसी शक्ति के कारण शासन नहीं कर रहे थे। केवल हिन्दुओं की कमजोरी अपने शिर पर उन्हें खुद ही चिपकाये हुए थी। इंग्रेजों के एक धक्के में उन्हें लुढ़का कर एक तरफ गिरा दिया और उनकी जगह पर खुद आविराजे। मुसलमानों की तरह इंग्रेज भी यहां मुट्ठी भर ही आये। इतने कम संख्या वाले लोगों का, इतने बड़े देश पर, इतनी शताब्दियों तक ऐसा कठोर शासन रहना, यह एक हैरत की बात होते हुए भी सत्य है।

एक समय हिन्दू जाति बहुत ऊंची दशा में थी, उसका चक्रवर्ती राज्य था, घरों पर स्वर्ण के कलश धरे रहते थे और उत्सवों पर मणिमुक्ताओं के चौक पुरते थे। दूध दही की नदियां बहती थीं। विद्या में, विज्ञान में, युद्ध में, शिल्प में, स्वास्थ्य में, धर्म में सभी बातों में यह देश अग्रिणी था। पर था तब, जब एक जीवित जाति के लक्षण उसमें मौजूद थे। जब से उन लक्षणों की कमी हुई तभी से जातीय जीवन भी नष्ट होता गया। आज हम उस स्थिति को पहुंच गये हैं कि किसी दूसरे के सामने वास्तविक बात कहते हुए शर्म आती है और खुद विचारते हैं तो आत्मग्लानि से छाती फटने लगती है।

इस देश में मुसलमान की संख्या करीब एक चौथाई है। हिन्दू उनसे तीन गुने अधिक हैं। इस पर भी सब जगह हिन्दुओं की ही दुर्दशा होती है। जिन प्रदेशों में वे बहुत संख्यक हैं वहां भी और जहां अल्प संख्यक हैं वहां भी उन्हें ही

पिटना पड़ता है। गत एक वर्ष से मुसलिम लीग ने जो नृशंस "सीधी कारवाही" की है, उसके परिणाम किसी से छिपे नहीं हैं। हजारों निरपराध बाल वृद्ध, स्त्री पुरुषों को त्राहि त्राहि करते हुए प्राण गंवाने पड़े। यह निर्बाध नृशंसता इस प्रकार बढ़ चली कि हमें उनकी मन मांगी मुराद पाकिस्तान देकर किसी प्रकार अपनी जान छुड़ानी पड़ी। इस पर भी अभी पीछा छूटता नहीं दीखता। अनेकों स्थानों के अनेकों समाचार इस आशंका को पुष्ट करते हैं कि आत्म समर्पण कर देने पर भी स्थायी शान्ति के दर्शन अभी दुर्लभ ही हैं। "हंसके लिया पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान" के नारे आये दिन हमारे कान सुनते हैं। और नारे लगाने वालों की कथनी और करनी की एकता के पिछले उदाहरणों को देखकर इन नारों को व्यर्थ की बकवास मानने को जी नहीं चाहता।

गत पन्द्रह अगस्त को एक हद तक राजनैतिक स्वाधीनता मिल गई है। शासन सत्ता हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के नेताओं के हाथ में आगई है। पाकिस्तानी शासक जिस नीति का आचरण कर रहे हैं उसके बावजूद में यहां फूंकर कर पैर रखा जारहा है। गोवध बन्दी जैसी सर्वमान्य न्याय पूर्ण आवश्यक बात को पूरा कराने के लिए इतनी झिझक अनुभव होरही है। इसे अपनी कमजोरी के अतिरिक्त और क्या कहा जाय?

आक्रमण कारियों का बढ़ता हुआ आतंक और आत्म रक्षा की विवशता अपनी कमजोरी के कारण ही सामने उपस्थित है। यह कमजोरी जब तक रहेगी तब तक यही स्थिति बनी रहेगी जो नौ सौ वर्ष से हमारे सामने मौजूद है। आन्तरिक कमजोरी एक ऐसा भयंकर कारण है, जिसके कारण अन्याय, जुल्म, त्रास, अपमान आदि का कोई न कोई रूप सामने आ ही खड़ा होता है। भेड़ जहां जाती है उसकी मुड़ाई होती है। बेचारे बकरे के लिए हिंसक पशु, मांसाहारी मनुष्य ही ... उसकी कमजोरी के कारण उसकी जान का खतरा हर जगह साथ लगा फिरता है। हमारी आन्तरिक कमजोरियों ने हमारे जातीय जीवन को खोखला कर दिया है, फल स्वरूप हिन्दू जाति के पास बहुत बड़ा जनबल, धनबल, बुद्धिबल होते हुए भी उसे नगण्य विघ्नों के नीचे अपना मस्तक नीचा करना पड़ता है। यह कमजोरियां जब तक रहेंगी तब तक मुसीबतों का अन्त नहीं उनका रूपान्तर होता रहेगा, और न गोवध ... रहेंगे एक आपत्ति समाप्त न होने पावेगी कि दूसरा नया संकट सामने आखड़ा होगा। और जिस तेजी से हिन्दू जाति का ह्रास होरहा है उसी गति से होता रहा तो थोड़े समय बाद आर्य संस्कृति एक ऐतिहासिक वस्तु रह जायगी।

यदि वस्तुतः हमें अपना अस्तित्व प्यारा है, यह वास्तव में दूसरों द्वारा अपने को पद दलित, एवं तिरष्कृत होने में हमें बुरा लगता है, यदि हर जगह दबना, पिटना, लुटना और सताया जाना हमें खटकता है तो इसके लिए गंभीरता पूर्वक उन कमजोरियों को तलाश करना होगा जिनके कारण हमारी आये दिन दुर्दशा होती है। बाहरी सहायता से कुछ तात्कालिक लाभ भले ही हो, पर स्थायी सुधार तभी होगा जब हम अपने भीतर छिपी हुई उन कमजोरियों को निकाल देंगे जो निमंत्रण दे दे कर नित नई आपत्तियों को बुलाया करती है।

चीन स्वतंत्र है पर उस स्वतंत्रता से वहां की जनता को कोई राहत नहीं मिली। हम आज जैसे हैं वैसे ही भविष्य में भी रहेंगे तो हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है वह भी हमारे लिए कुछ विशेष लाभदायक सिद्ध न होगी। बलवान ही चैन और सम्मान के साथ रह सकते हैं। हिन्दू जाति में इस दशा तक पहुंचाने वाले कौन २ दोष घुस गये हैं और उनके निवारण के क्या उपाय हैं, इस सबंध में अगले मास से सुविस्तृत चर्चा की हम एक लेख माला आरंभ करेंगे।

जीवन विश्लेषण।

(श्री भगवतीचरण वर्मा)

कुछ क्षण, जीवन के कुछ छोटे से [illegible]सता
अस्तित्व-ज्ञान के कुछ [illegible] मांगी
जिनमें कुरूपता जग की, अपने पल की [illegible]
प्रतिबिम्बित है वे क्षत विक्षत दर्पण ये।

लेकर निज उर में आग, नयन में पानी.
कहने बैठा हूं इनकी आज कहानी!

यह जीवन क्या है? केवल एक पहेली,
यह यौवन क्या है? विस्मृति की रंगरेली,
यह आत्म ज्ञान, तो भ्रम है केवल भ्रम है—
ममता रहती है निशिदिन यहां अकेली।

जी भर कर मिल लो आज, ठिकाना कल का?
युग का वियोग, संयोग एक ही पल का?

जग क्या है? उसको जान नहीं पाता हूं,
मैं निज को ही पहचान नहीं पाता हूं,
जग है तो मैं हूं, मैं हूं तो यह जग है—
जग मुझमें मैं भी जगमें मिल जाता हूं।

यह एक समस्या कठिन जिसे सुलझाना!
सुलझाने वाला हाय, बना दीवाना!

दीवाना पन है पाप? नहीं जीवन है,
ज्ञानी का केवल ज्ञान व्यर्थ क्रन्दन है,
ममता पर प्रति पल हंसकर घुल घुल कर—
मरने वाले का यहां मृत्यु ही धन है,

कामना कसक है और तृप्ति सूनापन,
हंसना ही तो है मृत्यु, रुदन है जीवन,

के पास बहुत [illegible] युग युग भर का देना,
हुए भी उसे नगण्य [illegible] जीवन का लेना,
[illegible] बाजार [illegible] करना पड़ता है। यह [illegible] है—
जितना जी चाहे [illegible] मुसीबतों का अन्त नहीं।
[illegible]
उर की लाली से मुख की कालिख धो [illegible], [illegible]
सर आज हथेली पर है बोली बोलो!

यह खेल नहीं है, प्राणों का विक्रय है,
जीवन [illegible] मिट मिट जाओ किसका भय है,
यदि आज नहीं तो निश्चय जानो कल ही—
ले लेगा तुमको काल यहां निर्दय है!

मिटने वालों को मरने से क्या डरना?
जिसमें ममता है, उसको ही है मरना!

है एक सत्य विश्वास, चलो खुल खेलो!
निर्भय हो जग के कठिन वार को झेलो!
है अविश्वास, भय, पाप, छोड़कर इनको—
यश अपयश जो कुछ मिले उसे ही ले लो!

है अमर यहां पर खुल कर करने वाले!
पग पग पर मरते रहते डरने वाले!

मस्ती से हस्ती भरी हुई गाफ़िल की,
मत बात चलाना अरे अभी मंजिल की!
चलना है—हमको बरबस जाना होगा—
फिर क्यों रह जाने पाये दिल में दिल की?

मैं समय सिन्धु में डुबा चुका अपना पन!
कल एक कल्पना और आज है जीवन!

—मानव से,

प्रकाशक व मुद्रक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, "अखण्ड ज्योति" प्रेस, घीयामंडी मथुरा।